

ଶ୍ରୀମଦ-ବିଷ୍ଣୁ

ସାମୁଦ୍ର ଚଳନାୟ ଶିଳ୍ପ
—

जन-समोजमें हिन्दी-भाषा-प्रेमियोंकी अधिकांश संख्या रहते हुए भी ऐसे पवित्र और आदर्श ग्रन्थ-रत्नका हिन्दीमें अभाव हो, यह कितने विषादकी बात है। प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी-भाषा में न रहनेसे पाठकोंको बाध्य हो, गुजराती भाषाकी पुस्तकोंसे संतोष करना पड़ता था और जिन लोगोंको गुजराती भाषाके समझने में कठिनायी होती, वे तो बहुत ही निरस्त और दुःखित होते थे। हाँ, किसी समय यति-मुनि-राजका योग होनेसे वे किसी तरह अपनी पीपासाको तृप्त करते थे। इसीसे हमने प्रस्तुत ग्रन्थके प्रकाशन करनेका उद्योग किया है।

पाठकोंकी अनुकूलताके लिये इसमें भाषाकी सरलता पर बहुत ही लक्ष दिया गया है; किन्तु फिर भी अन्तिमकं पाँच छह फार्मकी भाषा क्लिष्ट रह गयी है, इसका मुख्य कारण समयकी शीघ्रता एवं पुस्तकके बढ़ जानेका था। अगर हम इसे और भी सरल,

बनानेका प्रयत्न करते तो इसका कलेवर अवश्य ही दूना हो जाता । अस्तु ! यदि साहित्य-प्रेमी पाठकोंने हमारी इस कृतिको पसन्द किया तो दूसरे संस्करणमें इसकी त्रुटियोंको संशोधन कर और भी अधिक सुन्दर-सुबोध बनानेका यत्न करेंगे ।

आरम्भमें हमारी यह अभिलाषा थी, कि इसे बड़ी ही सुन्दरता और शीघ्रतासे छपवा कर प्रकाशित करेंगे । तदनुसार गतं कात्तिक पूर्णिमा पर इसके विज्ञापन भी बंटवा दिये । और उसी समय प्रेसवालेको कापी भी दे दी गयी ; किन्तु प्रेसकी मशीन बन्द पड़ जानेसे उसमें काम होना स्थगित हो गया । अतः हमें दूसरे प्रेसकी श्रृंखला लेनी पड़ी । उसने भी कुछ फार्म तेजीसे छापकर फिर विलम्ब करना आरंभ कर दिया । अन्तमें लाचार हो, तीसरे प्रेसमें काम कराना पड़ा । इसीसे इसके छपनेमें किन्तु देरी पड़ गयी । खैर, किसी तरह देरी-अवेरीसे सुन्दर

भी प्रकाशित होकर यह ग्रन्थ पाठकोंकी सेवामें जा रहा है, इसीमें हमें परम संतोष है।

मशीनकी रगड़ लगनेसे छपाईमें अक्षरोंकी मात्रायें बहुत जगह टूट गयी हैं, एवं शीघ्रताके कारण प्रूफ-संशोधनमें भी दृष्टि-दोषसे अशुद्धियें रह गयी हैं, एतदर्थ हम बड़े ही दुःखित हैं। इधर समयको संकीर्णताके कारण “शुद्धाशुद्धि पत्र” भी नहीं दे सके। अतः पाठकोंसे अनुरोध है, कि वे अशुद्धियोंको सुधार कर पढ़ें। यदि शास्त्रीय विषयमें उन्हें किसी जगह पाठ-फेर नजर आये तो हमें सूचित करनेकी कृपा करें, ताकि दूसरे संस्करणमें सुधार कर दिया जा सके।

२०१, हरिसन रोड
कलकत्ता ।

निवेदक—
काशीनाथ जैन ।

उत्तमोत्तम पुस्तकें पाढ़िये !

यदि आप हिन्दी जैन साहित्यकी उत्तमोत्तम सचित्र और सस्ती पुस्तकें पढ़कर आनन्द अनुभव करना चाहते हैं, यदि आप अपने बालक-बालिकाओंको सुशिक्षित एवं सच्चरित्र बनाना चाहते हैं, तो एक रुपया अग्रिम भेजकर हमारी आदिनाथ हिन्दी जैन साहित्य-मालाके स्थायी ग्राहक जरूर बनिये ।

विशेष विवरण जाननेके लिये 'माला' की नियमावली और पुस्तकोंका सूचीपत्र 'मुफ्तमें' निम्नलिखित पतेपर आज ही मंगाइये ।

पता—परिडत काशीनाथ जैन ।

मु० बंबोरा, पोष्ट—भीण्डर (मेवाड़)

धन्यवाद ।

हमें यह निवेदन करते अत्यन्त प्रसन्नता है, कि जैन-समाजके परम माननीय एवं अग्रगण्य बाबू बहादुर-सिंहजी सिंघी अजीमगंज-निवासीने इस पुस्तककी २५० प्रतियें खरीद कर हमारे उत्साहमें वृद्धि की है, एतदर्थ हम उनके परम अनुग्रहीत हैं । आशा है, अन्यान्य साधर्मिक बन्धु भी उक्त बाबू साहबका अनुसरण कर हमारे साहित्य-प्रचारके कार्यमें सहयोग देने की उदारता प्रकट करेंगे ।

२०१, हरिसन रोड }
कलकत्ता ।

निवेदक—
काशीनाथ जैन ।



श्रावक-कुल-भूषण परम माननीय आजीमगंज-निवासी
बाबू डालचन्दजी सिंघी ।

श्रीपाल-चरित्र ।

पहला परिच्छेद ।

पुत्र-वियोग ।

अं गदेशमें चम्पापुरी नामक एक नगरी थी । वहाँ सिंहरथ नामक राजा राज करते थे । उनकी रानीका नाम कमलप्रभा था । कमलप्रभा कुँकण देशके राजाकी बहिन थी । राजा सिंहरथकी अवस्था बहुत बड़ी हो जानेपर भी वह सन्तान-सुखसे वञ्चित थे । इसके लिये वह सदैव चिन्तित रहते थे । मनमें सोचा करते, कि मेरे बाद यह सब रोज-पोट कौन सम्हालेगा ? सन्तान-प्राप्तिके लिये वह

अनेक प्रकारकी मानतायें मानते और दान-पुण्य करते । अन्तमें, जिस प्रकार विद्या विवेकको जन्म देती है, उसी प्रकार रानी कमलप्रभाते एक तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया । राजाको इसके लिये बधाई दी गयी । उनके आनन्दका पारा-वार न रहा । समूचे नगरमें उत्सव मनाया जाने लगा । सभी लोग हृष तरङ्गोंसे आन्दोलित हो उठे । घर-घर बन्दनवार बाँधे गये । सारा नगर ध्वजा पंताँकोंसे सजाया गया । अग्रगण्य नगर-निवासी राजाकी सेवामें उपस्थित हो, उन्हें बधाई देने लगे । राजाने भी इस अवसर पर दरिद्रोंको मुक्त हस्तसे दान दिया । बन्दी-गण कारागारसे मुक्त कर दिये गये । शत्रुओं तकको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की गयी । शहर में चारों ओर आनन्दकी हिलोरे उठ रही थीं । कहीं मङ्गल-गान हो रहे थे, तो कहीं नाटक खेले जा रहे थे । कहीं बाजे बज रहे थे, तो कहीं दूसरे ही प्रकारसे आनन्द व्यक्त

किया जा रहा था । तात्पर्य यह कि समूचे शहरमें इस महोत्सवकी धूम मची हुई थी । पारहवें दिन राजाने अपने इष्ट-मित्र और बन्धु बान्धवोंको निमन्त्रित किया । भोजनादिसे नीवृत होनेके बाद वे सभी वस्त्राभूषण और नाना प्रकारकी बहुमूल्य चीजें देकर सम्मानित किये गये । राजाने समस्त जनोंके सामने सहर्ष घोषित किया, कि इस कुमार द्वारा मेरी राज-चछि और प्रजाका पालन होगा, अतः इसका नाम मैं “श्रीपाल” रखता हूँ ।

परन्तु राजाके भाग्यमें अधिक दिनों तक सन्तान-सुख भोगना न बढ़ा था । श्रीपालकी अवस्था अभी पूरे पाँच वर्षकी भी न हुई थी, कि एक दिन शूल रोगसे अचानक राजाका प्राणान्त हो गया । इस घटनासे चारों ओर हा-हाकार मच गया । रानी कमलप्रभा अथाह शोक-सागरमें विलीन हो गयी । उसका रुदन बढ़ाही करुणा पूर्ण था । जो उसे सुनता उसीका हृदय

द्रवित हो उठता । उसके दुःखका कोई पार न था । उसकी व्याकुलता अवर्णनीय थी ।

रानीकी इस व्याकुलताको समाचार सुन, मतिसागर नामक मन्त्री उसके पास गया । उसने अनेक प्रकारसे रानीको सान्त्वना देकर समझाया कि अब इस कल्पान्त से कोई लाभ नहीं । जो होना था सो हो गया । अब अपने हृदयको दृढ़ बनाइये और राज-काजकी बागडोर अपने हाथमें लीजिये । राजकुमारकी अवस्था अभी बहुत छोटी है । यदि आप इस समय अपनेको न सम्हालियेगा, तो राज्य हाथमें रहना कठिन हो जायगा ।

भविष्यकी चिन्ता भूत और वर्तमानको भुला देती है । मन्त्रीकी बातें सुन रानी को होश हुआ । उसकी बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण थी । राज्यके शत्रु और मित्रोंकी बातें उससे छिपी न थीं । उसने अपने आन्तरिक दुःख को हृदय में ही रख, मन्त्री से कहा—“मुझे आपपर पूर्ण

विश्वास है। आपके सिवा मुझे अब और किसी का सहाय भी नहीं है। आप राजकुमारको गद्दी पर बैठाकर राज-काज चलाइये और मेरे विश्वासको सफल बनाइये।”

मन्त्री वास्तवमें बड़ा स्वामि-भक्त था। उसने पुनः रानाको सान्त्वना दे, राजाकी अन्तिम क्रियाका प्रबन्ध किया। इससे निवृत्त होनेके बाद उसने प्रजाकी अनुमति ग्रहण कर कुमार श्रीपालको सिंहासनाखंड कराया। राज्य-भरमें उसके नामकी दोहाई दी गयी। यह सब प्रथायें पूर्ण होनेपर वह पूर्ववत् राज्यका समस्त कार्य सञ्चालन करने लगा।

मतिसागरका यह कार्य अनेक स्वार्थी और द्वेषी लोगोंको पसन्द न आया। ऐसे लोगोंमें श्रीपालका एक चचेरा काका प्रधान था। उसका नाम अजीतसेन था। उसने सोचा कि यदि इस समय मतिसागर और श्रीपालको किसी तरह मार डाला जाय, तो सिंहस्थका समस्त राज्य

और समस्त सम्पत्ति हाथ आ सकती है । धीरे-धीरे वह इंसके लिये षड्यन्त्र रचने लगा । राज्य के अनेक उच्च अधिकारियों और राज-परिवार के अनेक व्यक्तियोंको उसने नाना प्रकारके प्रलोभन देकर हाथमें कर लिया । भीतर-ही-भीतर सब तैयारियाँ पूरी हो गयीं । मतिसागर और श्रीपाल पर अब विपत्तिका पहाड़ टूटने ही वाला था, कि मतिसागरके किसी शुभ-चिन्तकने उसको चुपचाप इस बातकी सूचना दे दी । मतिसागर सावधान हो गया । उसने तुरन्त रानी को भी इस बातकी सूचना दे दी ।

रानी यह भीषण समाचार सुनते ही विचलित हो उठी । राजकुमार पर अनैवासी विपत्ति की कल्पनासे ही उसका नारी-हृदय कंपित हो उठा । किन्तु अब कुछ सोचने या विलम्ब करने का समय न था । मतिसागरने उसे सलाह देते हुए कहा, कि अब बाजी पलट गयी है । कुमारके प्राण बचानेका केवल एक यही उपाय दिखायी

देता है, कि आप किसी तरह रातहीको कुमार के साथ यह स्थान छोड़ जायें । किसीको कानो कान इस बातकी खबर न होनी चाहिये । यदि राजकुमार बच जायेंगे, तो फिर किसी दिन यह राज्य हस्तगत कर सकेंगे । इस समय, इसके सिवा और कोई उपाय मुझे दृष्टिगोचर नहीं होता ।

मन्त्रीकी यह सलाह, रानीको मजबूरन माननी पड़ी । पाँच वर्षके पुत्रको गोदीमें ले, वह उसी रातको महलसे चल पड़ी । उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी, हृदय टूक-टूक हो रहा था, किन्तु पुत्रके प्राणोंकी ममता उसे उस राज-मन्दिर और उस नगरको छोड़नेके लिये बाध्य कर रही थी । जहाँ उसने वर्षों तक राज महिषीके स्थान पर रहकर, विपुल सुख-सम्पत्ति और ऐश्वर्यका उपभोग किया था, न उसने कभी धूप देखी थी, न सेर भर बोझ उठाया था, न कभी पैदल चलनेका ही उसे काम पड़ा

था । आज दैव दुर्विपाकसे उसे इन सभी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा । रातका समय था । चारों ओर घोर अन्धकार था । उसे पद पद पर ठोकरें लगती थीं । सुकोमल चरणोंमें काँटे और कंकड़ लगनेसे रुधिरकी धारा बह रही थी, बारंबार हिंसक प्राणियोंके भीषण नाद उसका कलेजा कँपा देते थे । झाड़ियोंमें उलझ उलझ कर उसके वस्त्र चीथड़ोंमें परिणत हो गये थे । फिर भी वह अपने जीवन सर्वस्व राजकुमारको लिये हुए उत्तरोत्तर आगे बढ़ती जाती थी । सत्य और सतीत्व यह दोनों उसके प्रबल साथी थे । राजकुमारकी भी जावन-डोरी लम्बी थी, इसलिये कितनी हिंसक प्राणोंने उस पर आक्रमण न किया । जो रत्नके हिंडोलेपर झूलती थी, पुष्प शैयापर सोती थी, कभी कठिन भूमि पर पदभी न रखती थी, वह आज वन्य पशुओंसे पूरित भयंकर जंगलमें, अंधेरी रात्रिके समय अकेली भटक रही थी ! कालकी कुटिलताका



वह आज वन्य पशुओं से पूरित भयंकर जंगलमें, अंधेरी रात्रिके समय अकेली भटक रही थी ! [पृष्ठ ८]

इससे भयंकर प्रमाण और क्या हो सकता है ?

समय अपना काम कर रहा था । धीरे-धीरे रात्रि व्यतीत हुई । सूर्योदय होने पर रानीको रास्ता सुझाई दिया और वह जंगलको छोड़कर एक वास्तविक पथ पर आ लगी । प्रतिपल उसे यह भय लगा हुआ था कि कहीं अजीतसेनके मनुष्य उसे पकड़ न ले जायें । किन्तु इस भयसे मुक्त होनेका कोई उपाय उसे सूझ न पड़ता था । इसी समय राजकुमारको भूख लगी । उस बेचारेको क्या खबर थी, कि दुर्दैवने आज उसे राजसिंहासन से उठा कर रास्तेका एक भिखारी बना दिया है । उसने सदाकी भ्रांति मातासे मिश्री मिले दूधकी याचना की । माताके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली । उसने किसी तरह कुमारको समझा-बुझा कर शान्त किया और द्रुतवेगसे आगेकी राह ली ।

कुछ दूर आगे चलने पर रानीको सात सौ कोढ़ियोंका एक दल मिला । इस दलके लोग

नाना प्रकारकी व्याधियोंसे ग्रसित हो रहे थे । अधिकांश गलित कुष्ठसे पीड़ित थे । फिर भी वे सभी बहुत ही प्रसन्न मालूम होते थे । रानीको पुत्रके साथ कष्टपूर्वक रास्ता काटते देख, उन्होंने रानीसे पूछा कि—“तुम किसी भले घरकी स्त्री मालूम होती हो, फिर भी तुम्हें इस तरह अकेले और पैदल क्यों चलना पड़ रहा है ?”

किसी दुःख या सुखमें समानता होनेपर स्वाभाविक रूपसे ही एक दूसरेके प्रति सहानुभूतिका भाव उत्पन्न हो जाता है । रानीने सोचा कि इन दुःखी मनुष्योंके सम्मुख अपना दुखड़ा रानेसे किसी प्रकारकी हानि नहीं हो सकती, इसलिये उसने सब सच्ची बातें उन लोगोंको कह सुनायीं । रानीकी करुणा जनक बातें सुनते ही कोढ़ियोंके हृदय द्रवित हो उठे । उन्होंने कहा कि “तुम्हारा इस तरह चलना भय से खाली नहीं है । संभव है कि अजीतसेनके मनुष्य तुम्हें खोजते हुए यहाँतक आ पहुँचें

और तुम दोनोंको पकड़ ले जायँ । इसलिये यही उत्तम होगा, यदि तुम हमारे दलमें मिल जाओ । फिर किसी तरहका भय न रहेगा । जबतक हम जीते हैं, किसकी मजाल है कि तुम्हारी ओर आँख उठा कर भी देख सके ?”

कोढ़ियोंकी इन बातोंसे रानीको बहुत हिम्मत आई । उनके दलमें सम्मिलित होते उसे आन्तरिक सङ्कोच हो रहा था; किन्तु राजकुमारको बचानेके लिये इससे बढ़कर दूसरा कोई उपाय न था । इसी लिये उसने कोढ़ियों की बात स्वीकार कर ली । कोढ़ियोंने उसे सवारीके लिये एक टट्टू दे दिया । रानीने राजकुमारका गोदमें ले, चारों ओरसे अपना शरीर ढँक लिया, और उसीपर बैठ, कोढ़ियोंके साथ वह अपना रास्ता तय करने लगी ।

यह दल कुछ ही दूर आगे बढ़ा था कि पीछे से अजीतसेनके सवार आते हुए दिखाई दिये । कोढ़ियोंके नजदीक आनेपर उन्होंने पूछा—

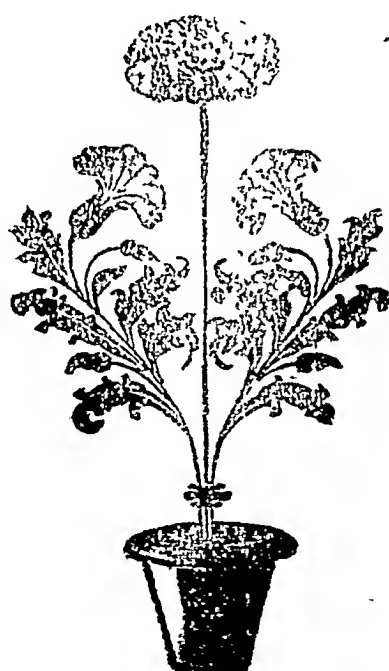
“क्या तुमने किसी स्त्रीको एक बच्चेके साथ इस रास्तेसे जाते देखा है ?”

कोढ़ियोंने साफ इन्कार किया ; परन्तु सवारोंको सन्देह हुआ, इसलिये वे कोढ़ियोंसे नाना प्रकारके प्रश्न करने लगे । कोढ़ियोंने उत्तर दिया कि—“हमने किसी स्त्रीको न तो जाते ही देखा है, न वह हमारे ही साथ है, फिर भी यदि तुम्हें विश्वास न हो तो हमारे दलकी भली भाँति तलाशी ले सकते हो ; किन्तु इस बातका ध्यान रहे कि हमें छूनेसे तुम्हें भी यही रोग हो जानेकी सम्भावना है ।”

कोढ़ियोंकी यह बातें सुन सवारोंने अधिक जाँच-पड़ताल करना अनावश्यक समझा और वहींसे वे सब वापस लौट गये ।

अब राजकुमार व रानीको किसी प्रकारका भय न रहा ; किन्तु दुर्भाग्यवश कोढ़ियोंके साथ रहने और उनके हाथका अन्न-जल ग्रहण करने-से कुछ दिनोंमें कुमारको भी कुष्ठ व्याधि हो

गयी । रानीको यह देख कर बड़ी चिन्ता हुई ।
उसने स्थिर किया कि कुमारको इस व्याधिसे
छड़ाना ही होगा । यह विचार कर उसने राज-
कुमारको कोढ़ियोंके हवाले कर, औषधिकी
खोजमें एक ओर चल दिया । कोढ़ियोंके दलने
राजकुमारके साथ मालव-देशकी ओर प्रस्थान
किया ।



दूसरा परिच्छेद ।

राज-कन्याओंकी परीक्षा ।

इस भारतवर्षके मध्य खण्डमें मालव नामक एक विख्यात और मनोहर प्रदेश है । किसी समय उज्जयिनी—उज्जैन नामक नगरी उसकी राजधानी थी । वहाँ उन दिनों प्रजापाल नामक राजा राज करता था । उसके दो रानियाँ थीं । एकका नाम था सौभाग्य सुन्दरी और दूसरीका नाम था रूपसुन्दरी । सौभाग्यसुन्दरी मिथ्यात्वी और रूपसुन्दरी सम-किती थी । कुछ दिनोंके बाद दोनोंने एक-एक पुत्रीको जन्म दिया । सौभाग्यसुन्दरीकी पुत्रीका नाम सुरसुन्दरी और रूपसुन्दरीकी पुत्रीका नाम मैनासुन्दरी रक्खा गया ।

जब इन कन्याओंकी अवस्था विद्याभ्यास करने योग्य हुई, तब सौभाग्यसुन्दरीने अपनी

पुत्रीके शिक्षणका भार एक वेदशास्त्र-पारंगत ब्राह्मणको सौंप दिया। सुरसुन्दरीने उस ब्राह्मण परिणितसे चौंसठ कलायें, शब्द-शास्त्र निघंटु और चिकित्सा-शास्त्र आदिकी शिक्षा प्राप्त की।

मैनाकी माताने अपनी पुत्रीको जिनमत के एक परिणितसे शिक्षा दिलाई। उसने अच्छे, अच्छे सिद्धान्तोंका अध्ययन किया और काव्य-कला, संगीत, गायन, वादन, ज्योतिष, वैद्यक तथा विविध कलाओंका ज्ञान सम्पादन किया। जैन सिद्धान्तोंका रहस्य जाननेपर उसे स्याद्वाद मार्ग पसन्द पड़ा। उसने सातों नय, नवतत्त्व, षट्द्रव्य और उनके गुण-पर्यायोंका अभ्यास किया। कर्म-ग्रन्थ, संघयण, दोत्रसमासादि प्रकरण अर्थ सहित कंठाग्र किये और प्रवचनसारो-च्चारदि ग्रन्थ पढ़कर जैन धर्मका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया।

जब दोनों कन्यायें पढ़-लिखकर प्रवीण हुईं, तब एक दिन राजाने विचार किया कि

इनकी परीक्षा लेनी चाहिये । निदान उसने उन दोनों बालिकाओंको वस्त्रा-भूषणोंसे अलंकृत हो सभा-भवतमें उपस्थित होनेकी आज्ञा दी । आज्ञा मिलते ही दोनों राजकुमारियाँ अपने-अपने अध्यापकोंके साथ राज-सभामें पहुँच गईं ।

राजाने अपनी दोनों पुत्रियोंसे शास्त्रके अनेक गूढ़ प्रश्न पूछे । दोनोंने उन प्रश्नोंके उत्तर बहुत ही शीघ्रता और सच्चाईके साथ दिये । राजाको इससे परम सन्तोष हुआ । अध्यापकों और सभाजनोंको भी सन्तोष और आनन्द हुआ । कुमारियोंकी बुद्धिमत्ता और कला-कुशलता देखकर सबके हृदय आश्चर्य से पूरित हो गये । पुत्रियोंकी विनम्र भाषा और ज्ञान-युक्त बातें राजाको अमृतसे भी बढ़कर मधुर प्रतीत हुईं ।

इसके बाद राजाने दोनों कन्याओंसे कई समस्यायें पूछीं । कन्याओंने तत्काल उनके उत्तर दिये । इसके बाद उसने पूछा—“बेटियो!

भला यह तो बतलाओ कि पुण्यसे किस वस्तुकी प्राप्ति होती है ?”

सुरसुन्दरीने उत्तर दिया—“पुण्यसे धन, यौवन, सुन्दरता, चातुर्य और प्रियतमकी प्राप्ति होती है ।” मैनासुन्दरीने कहा—“पुण्यसे न्याय-शील बुद्धि, निरोग-शरीर और सद्गुरुकी प्राप्ति होती है ।

दोनोंके उत्तर युक्ति-संगत और सत्य थे । राजाको यह उत्तर सुनकर बहुत ही प्रसन्नता प्राप्त हुई । उसने अभिमान-पूर्वक कहा—“पुत्रियो ! मैं तुमसे बहुत परितुष्ट हुआ हूँ । इस समय तुम्हें जो इच्छा हो, वह माँग सकती हो । यह बात शायद तुमसे छिपी न होगी कि मैं निर्धनकी धनवान और रंकको राजा कर सकता हूँ । सब लोग मेरी ही कृपासे सुख भोग रहे हैं । मैं जिससे तुष्ट हो जाऊँ, उसे इस संसारके समस्त पदार्थ मिल सकते हैं । और जिससे मैं रुष्ट हो जाऊँ, उसे कहीं बैठने-

को भी ठिकाना नहीं मिल सकता ।

पिताकी यह बात सुनकर सुरसुन्दरीने कहा—“पिताजी ! आपने जो कहा वह बिल्कुल ठीक है । इस संसारमें जीवन-दाता दो ही हैं । एक तो मेघ और दूसरा राजा । यदि यह दोनों न हों, दुनिया देखते-ही-देखते उलट-पुलट हो जाय !”

सुरसुन्दरीकी यह बातें सुन हाँ-में-हाँ मिलानेवाले सभाजनोने भी उसकी बातोंका समर्थन करते हुए कहा कि—“सुरसुन्दरीकी बातें बहुत ही ठीक हैं । ऐसी चतुरकन्या हमने आज तक और कहीं नहीं देखी ।”

पुत्रीकी यह प्रशंसा सुन राजाका हृदय आनन्दसे फूल उठा । उसने कहा—“सुरसुन्दरी ! तेरी ज्ञान-गरिमा देखकर मैं आज मारे हर्षके फूला नहीं समाता । अब मैं शीघ्र ही किसी योग्य वरसे तेरा विवाह कर तेरे सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करूँगा ।”

राजाने यह बात व्यर्थ ही न कही थी । उसे पहलेसे ही यह बात मालूम हो चुकी थी, कि सुरसुन्दरी मन-ही-मन अरिदमन पर अनुरक्त हो रही थी । अरिदमन कुरु जंगल देशका तत्कालीन राजा था । शंखपुरी उसकी राजधानी थी । इन दिनों वह प्रजापालका अतिथि था और आज भी वह राज-सभामें उपस्थित था । राजा ने यह सब जानकर ही उपरोक्त बात कही थी । उसने उसी समय उन दोनोंके विवाहकी बात पक्की कर दी । सुरसुन्दरी अपने अभीष्टको पाकर अनिर्वचनीय सुखमें विभोर हो गई ।

जिस समय सुरसुन्दरी राज-सभामें इस प्रकार सम्मानित हो रही थी, उस समय मैना-सुन्दरी बैठी-बैठी माथा धुन रही थी । उसकी यह अवस्था देख राजाने कहा—“क्यों मैना ! सुरसुन्दरीने जो बात कही और सभा-जनों द्वारा जो बात अनुमोदित हुई, क्या वह तुम्हें पसन्द न आयी ? तुम्हें न रुची ? यदि यही बात है

और तू अपनेको सबसे ज्यादा चतुर, समझती है, तो अपने मनके बात क्यों नहीं कहती ?”

विदुषी मैनासुन्दरीने कहा—“पिताजी ! मैं क्या कहूँ ? जहाँ लोगोंके मन विषय-कषायके कारण मोह-जालमें उलझ रहे हों, जहाँ राजा अविवेकी हो—कहता कुछ और करता कुछ हो, और जहाँ जीहजूरोंका दरबार लगा हो, वहाँ कुछ न कहना ही अच्छा है । फिर भी मुझसे कहे बिना नहीं रहा जाता, इसलिये दो-चार बातें कहती हूँ । पिताजी ! जिसका हृदय विवेक रुपी दीपकके प्रकाशसे प्रकाशित रहता है, वह कभी अज्ञानके फेरमें नहीं पड़ता । आप अपने हृदयमें विवेकको स्थान दीजिये, कुछ सोचिये-समझिये, मिथ्याभिमान न कीजिये ; क्योंकि यह सुख-सम्पदा सागर-तरंगकी भाँति अस्थिर है । न कहीं यह स्थिर होकर रही है, न रहेगी । साथ ही एक बात और भी ध्यान देने योग्य है । इस संसारमें प्राणीमात्र जो सुख-



यदि किसीके दुष्कर्मोंका उदय हुआ हो तो आप हजार चेष्टायें करने पर भी उसे सुखी नहो कर सकते और यदि किसीके भाग्यमे सुख वदा हो. तो आप उसे उस सुखमे वञ्चित भी नहीं रख सकते ।

[पृष्ठ २१]

दुःख भोग करते हैं, उसमें अणुमात्र भी कमी या वेशी करना मनुष्यकी शक्तिके परे है । आप कहते हैं, कि मैं निधनको धनवान और रंकको राजा कर सकता हूँ; परन्तु यह ठीक नहीं । यदि किसीके दुष्कर्मोंका उदय हुआ हो तो आप हजार चेष्टायें करने पर भी उसे सुखी नहीं कर सकते और यदि किसीके भाग्यमें सुख बढ़ा हो, तो आप उसे उस सुखसे वञ्चित भी नहीं रख सकते । मेरा आपसे यही निवेदन है कि आप मिथ्याभिमान छोड़ दें—इस बुरी धारणाको भूलकर भी हृदयमें स्थान न दें । इसीमें आपका कल्याण है । मुझे यह सब बातें कहनी उचित न थी; किन्तु आपके अनुरोध करनेपर मैं भी चुप न रह सकी । मुझे विश्वास है, कि इससे आप बुरा न मानेंगे ।”

मैनासुन्दरीकी यह बातें सुन राजाका चेहरा क्रोधसे तमतमा उठा । उसकी आँखोंसे मानों चिनगारियाँ भरने लगीं । उसने कहा—“धन्य

है पुत्री ! तूने अच्छी विद्या प्राप्त की। तुझे पढ़ाने-लिखानेका यही फल हुआ, कि तूने आज मेरी बात काटी, भरी सभामें मेरा अपना किया; किन्तु ध्यान रहे, इससे मेरा कुछ न बिगड़ेगा। इन बातोंसे तूने अपना ही भविष्य बिगाड़ डाला है। मैंने तुझे पाल-पोस कर बड़ी किया, अच्छेसे अच्छा भोजन खिलाया, बढ़ियासे बढ़िया कपड़े पहनाये, सेवाके लिये दास-दासियाँ दीं और सब तरहसे तुझे सुखी रक्खा। क्या तू यह कहना चाहती है, कि यह सब मैंने नहीं किया—तेरे भाग्य-बलसे ही हो गया ?”

मैंनासुन्दरीने कहा—“पिताजी ! आप बुरा न मानिये, क्रोधको किनारे रख, तत्व-बुद्धिसे विचार कीजिये और सोचिये कि मैं जो कहती हूँ, वह ठीक है या नहीं। मैं तो फिर भी कहती हूँ कि, कर्म-संयोगसे ही आपके वंशमें मेरा जन्म हुआ है। आपकी ओरसे मुझे जो वस्त्रालङ्कार, खान-पान, सुख-समृद्धि या प्रेम उपलब्ध होता

है, वह मेरे शुभ कर्मों के उदयका ही फल है, और कुछ नहीं । यदि आप शान्त चित्तसे विचार करेंगे, तो मेरी इन बातोंका तथ्य तत्काल सम्भ्रममें आ जायगा ।

राजाने रुष्ट होकर कहा—“बस मैना ! मैं अब तेरी बातें नहीं सुनना चाहता । यदि तुझे प्रारब्ध पर ही इतना अधिक विश्वास है, तो अब तेरा व्याह मैं ऐसे वरसे करूँगा, जिसे प्रारब्ध ही यहाँ ले आयी होगी । बस, फिर तू अपने प्रारब्ध-बलसे कितना सुख भोगती है, सो मैं देख लूँगा ।

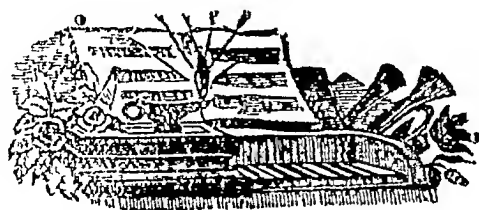
राजा और मैनासुन्दरीकी बात-चीतका यह दुःस्परिणाम देखकर लोगोंको बड़ा खेद हुआ । अकारण ही राज-सभामें राजाका अपमान करने के कारण अनेक जन मैनाकी निन्दा करने लगे । कितनोंहीने उसकी विद्याको धिक्कारा और कितनोंहीने उसके अध्यापककी निन्दा की । नगर-निवासी भी मैनाकी बुद्धिपर हँस-हँस कर कहने

लगे कि बलिहारी है, इस बुद्धिको, कि इसने राजाकी प्रसन्नताको अप्रन्नतामें परिणत कर, अपने लिये विपत्ति बटोर ली । मिथ्यात्वियोंको भी जैन मतको खिल्ली उड़ानेका अवसर मिल गया । वे कहने लगे—“जैनोंकी सभी बातें उलटी होती हैं । व्यवहार-बुद्धि तो उन्हें होती ही नहीं । प्रत्येक बातमें उद्गडता और उछ-झलता ही दिखाई देती है । विवेक और नम्रता किसे कहते हैं, यह शायद वे जानते ही नहीं ।”

मैनासुन्दरीकी बातोंपर चारों ओर इसी तरहकी आलोचनायें हो रही थीं ; परन्तु उसे रश्मिमात्र भी इसका खेद न था । उसे अपने प्रारब्ध पर अटल विश्वास था । वह जिस प्रसन्नताके साथ राज-सभामें आयी थी, उसी प्रसन्नताके साथ वहाँसे विदा हुई । मानों कुछ हुआ ही नहीं । परन्तु राजा-प्रजापाल बैठा-बैठा क्रोधसे काँप रहा था । उसकी अवस्था बहुत ही विचित्र हो रही थी । मालूम होता था कि वह

इस समय न जाने क्या कर डालेगा ? 'उसके चतुर मन्त्रीने उसका ध्यान इस घटनाकी ओरसे हटाकर उसे शान्त करनेके विचारसे कहा—
“महाराज ! बगीचे जानेका समय हो गया है । आज्ञा हो तो सवारीकी तैयारी की जाय ।”

यह बात सुनते ही राजाको अपने कर्तव्य का स्मरण हुआ । मन्त्रीको अनुमति सूचक उत्तर दे, उसने उसी क्षण सभा विसर्जन कर दी ।





तीसरा परिच्छेद ।

सिद्धचक्रकी प्राप्ति ।

बड़ी सज-धजके साथ प्रजापालकी सवारी बगीचेकी ओर चली । कई सवार आगे और कई सवार पीछे चलते थे । साथमें ध्वजा-पताका आदि राज-चिन्ह भी थे । राजा एक बहुमूल्य घोड़ेपर सवार थे । जिस समय यह सवारी शहरके बाहर पहुँची, उस समय राजाने देखा कि सामने बहुत सी धूल उड़ रही है । मन्त्रीसे इसका कारण पूछने पर उसने बतलाया कि—“यह सात सौ कोढ़ियोंका एक दल है और इस समय हमारे शहरकी ओर आ रहा है । इन कोढ़ियोंने एक कोढ़ीको अपना राजा बनाया है और उसीके साथ चारों ओर भ्रमण

किया करते हैं । जहाँ जाते हैं, वहींके राजा और धनी-मानी व्यक्तियोंसे सहायता माँगते हैं । इस प्रकार इन्हे जो कुछ मिल जाता है, उसीसे अपनी जीविका चलाते हैं । स्वास्थ्यकी दृष्टिसे हम लोगोंको इनसे दूर ही रहना वांछनीय है ।”

मन्त्रीकी यह बात सुन राजाने वह रास्ता छोड़कर दूसरा रास्ता लिया । कोढ़ियोंने यह देखकर तुरन्त अपना दूत राजाके पास भेजा । उसने राजाको खड़ा कर सविनय निवेदन किया —“राजन् ! हम लोग बड़ी आशाके साथ आपके पास याचना करने आ रहे थे; परन्तु हमें यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि आपने हमें देखते ही अपना रास्ता बदल दिया । आप जैसे यशस्वी दानवीरोंको इस प्रकार दानसे मुँह न मोड़ना चाहिये ।”

राजाने कहा—दानसे मुँह मोड़नेके उद्देश से हमने रास्ता न बदला था । खैर, कहो तुम

क्या चाहते हो ? भरसक तुम्हारी इच्छा पूर्ण की जायगी ।

दूतने कहा—“राजन् ! हमने अपने राजाके लिये समस्त चीजें जुटा ली हैं, परन्तु अबतक रानीका कोई प्रबन्ध नहीं कर सके । यदि कोई सद्गुणी और सुशीला कन्याके लिये आप प्रबन्ध कर सकें, तो हम लोग आपके चिर-कृतज्ञ रहेंगे ।”

दूतकी यह बात सुन राजाको राज-सभाकी घटना स्मरण हो आयी । उसने मनमें सोचा कि यदि मैनासुन्दरीका ब्याह कोढ़ियोंके राजासे कर दिया जाय, तो मेरी कीर्ति भी बढ़ सकती है और मैनाको भी कर्म-फल भोगनेका अवसर मिल सकता है । यह सोच कर उसने कहा—“तथास्तु, तुम लोग अपने राजाको लेकर राज-सभामें उपस्थित हो । मैं अपनी राज-कन्यासे उसका विवाह कर दूँगा ।”

राजाकी यह बात सुन कोढ़ियोंका दूत स्तम्भित हो गया । उसे किसी प्रकार विश्वास

ही न होता था कि प्रजापाल अपनी राज-कन्या का एक कोढ़ीके साथ ब्याह कर देगा । उसे इस प्रकार असमंजसमें पड़ा देख, राजाने दपट कर कहा—“मूर्ख सोच क्या कर रहा है ? विश्वास रख, कि मेरी बात अब फिर नहीं सकती ।”

यह सुन, दूत तुरन्त वहाँसे चलता बना । उसने अपने दलको यह हर्ष-समाचार सुनाया । सुनते ही मारे खुशोके सारा दल उछल पड़ा ।

उधर राजाके हृदयमें तो क्रोधान्नि धँधक रही थी । राज-कन्याको आहुति दे वह उसे शान्त करना चाहता था । राज-सभामें पहुँचते ही उसने मैनासुन्दरीको बुलाकर कहा—“देख, अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है । तू कर्मवाद छोड़ कर मेरा पक्ष ग्रहण कर । मेरी कृपासे तुझे इच्छित सुखोंकी प्राप्ति हो सकती है ।”

मैनासुन्दरीने कहा—“पिताजी ! यह मिथ्यावाद छोड़ दीजिये । इस संसारमें हम लोगोंको जो कुछ सुख-दुःख मिलता है, वह

कमके ही कारण मिलता है । अन्यान्य चीजें तो केवल निमित्त मात्र हो सकती हैं ।”

पिता-पुत्रीका यह अप्रिय विवाद सुनकर लोग तरह-तरहकी बातें करने लगे । कोई राजाको दोष देता, तो कोई राज-कन्याको । कोई कहता—“राजा यह काम अच्छा नहीं कर रहे, हैं, कोई कहता—राज-कन्याको इस समय मौका देख कर बात करनी चाहिये थी ।”

जिस समय राज-सभामें यह विवाद चल रहा था, उसी समय शहरमें कोढ़ियोंके दलने प्रवेश किया । इस समय वे एक बरातके रूप में चल रहे थे । कोढ़ियोंके राजाका नाम उम्बर सना था । यह हमारे वही पूर्व-परिचित कुमार श्रीपाल थे । उनके ऊपर किसी कोढ़ी-ने छत्र धर रखा था, तो कोई-कोई चव्वर ढाल रहा था । आगे-आगे एक कोढ़ी छड़िदारकी भाँति बिरदावली पुकारता जा रहा था । सबके बीचमें उम्बर राना एक टट्टू पर बैठे हुए थे ।

वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानो जले हुए बबुलोंके बीचमें एक आग्न-वृक्ष खड़ा हो। कोढ़ियोंका दृश्य तो बहुत ही विचित्र था। गलित कुष्ठके कारण किसीके हाथ गल गये थे, कोई पंगु हो गया था, किसीकी नाक गायब हो गई थी, तो किसीके कानोंका ही पता न था। किसीके मुँह पर मक्खियाँ भिन-भिना रही थीं, किसीके मुँहसे लार टपक रही थी और किसीके शरीर पर चकते-ही-चकते नजर आते थे। रास्तेमें वे चलते समय बारंबार हर्ष-नाद करते थे। लोगोंने जब उनका परिचय पूछा तब उन्होंने बतलाया, कि राज-कन्यासे उम्बर रानाका ब्याह होनेवाला है और हम लोग उनकी बरात लिये जा रहे हैं। कोढ़ियोंकी यह बात सुन लोगोंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। कौतूहल वश वे भी उनके साथ हो लिये। कुछ ही समयमें कोढ़ियों और तमाश-बीनोंका यह दल राज-सभामें जा पहुँचा।

उम्बरको देखते ही राजाने मैनासुन्दरीसे

कहा—देख, मैना ! तेरे कर्मने ही जोर मारा है । यह तेरा भावी पति है । इसीको तुम्हें अपना जीवन-संगी बनाना होगा ।

राजाकी यह बात सुन मैनासुन्दरीको जरा भी खेद न हुआ । उसका मुख-मण्डल ज्योंका त्यों प्रदीप्त और प्रसन्न बना रहा । वह अपने मनमें कहने लगी—“मुझे व्यर्थ ही क्यों शोक करना चाहिये । जो भाग्यमें लिखा होगा, वही होगा । कर्मकी रेख पर मेख कौन मार सकता है ? फिर यह भी तो मेरा धर्म है, कि पिताजी चार जनके सामने जिसे मेरा पति नियत करें, उसे मैं तन-मनसे पति-रूपमें ग्रहण करूँ । ऐसा न करना भी कुल-कामिनियोंके लिये कलङ्ककी एक बात हो सकती है ।

यह सोच कर मैनासुन्दरीने उत्तर दिया—
“पिताजी ! मैं आपकी यह व्यवस्था सहर्ष अङ्गीकार करती हूँ । मुझे इसमें जरा भी आपत्ति या संकोच नहीं है ।”



देख, मैना । तेरे कर्मने ही जोर मारा है । यह तेरा भावी पति है । दसीको तुझे अपना जीवन-संगी बनाना होगा ।

(पृष्ठ ३२)

राज-कन्याकी यह दृढ़ता और आत्म-विस-
 जन देख/सब लोग स्तम्भित हो गये । क्रोधके
 कारण राजाकी बुद्धि मारी गयी थी, इसलिये
 उसके हृदय पर तो कोई प्रभाव न पड़ा; किन्तु
 इस घटनाको देखकर सहृदय उम्बर राणाका
 हृदय काँप उठा। उसका अन्तरात्मा पुकार उठा,
 कि ऐसी राज-कन्यासे व्याह कर उसका जीवन
 नष्ट करना भयंकर पाप है—अक्षम्य अपराध है ।
 उसके हृदयमें स्वाभाविक मोहकी अपेक्षा इस
 विवेक भावनाका विशेष प्राबल्य था कि मेरे—
 संसर्गसे इस राज-कन्याका जीवन नष्ट न हो
 जाय। उसने राजासे कहा—“राजन्! यह अन्तमेल
 विवाह ठीक नहीं। कौवेके गलेमें रत्न-हार शोभा
 नहीं दे सकता। गंधेकी पीठपर अम्बारी नहीं
 शोभ सकती। अच्छा हो कि आप इस देव-कन्या
 सी राज-कुमारीका व्याह मेरे साथ न करें।”

पुरुष-प्रकृति स्वाभाविक ही स्त्री-सौन्दर्य पर
 लुब्ध रहती है। पुरुष स्वयं चाहे जैसा रोगी-दोषी

हो, वह सदा इस सृष्टि-काननके नारी-पुष्पका
 रसास्वादन करनेके लिये उत्कण्ठित रहता है ।
 राणा उम्बरकी यह बातें उसके महान् त्याग-
 एवम् उच्च-प्रकृतिकी परिचायक थीं । एक पुरुष
 शायद ही कभी इससे बढ़कर त्याग कर सकता
 है । जिन लोगोंने उम्बरकी यह बातें सुनीं, वे
 मन-ही-मन उसकी सहृदयता पर मुग्ध हो गये ।
 उम्बरका शरीर ही दूषित था, मन नहीं । लोगों
 पर उसकी बातोंका बहुतही प्रभाव पड़ा; किन्तु
 राजाका पाषाण-हृदय टस से-मस न हुआ । उसने
 कहा—“इसमें मेरा दोष नहीं । इस कन्याका
 अपने कम पर अटल विश्वास है । मैंने इसे
 बहुत समझाया; किन्तु इसने मेरी एक न सुनी ।
 यदि इसके भाग्यमें सुख बंदा होगा, तो यह तेरे
 साथ भी सुखी ही रहेगी । मैं इस कन्याको
 इसके कर्मवादके कारण यह दण्ड दे रहा हूँ ।
 मैं यही देखना चाहता हूँ कि इसका कम इसे
 कहीं तक सुखी बना सकता है ?”

राजाका यह दुराग्रह देख लोग हताश हो गये । मन हो मन सब उसे भला बुरा कहने लगे, किन्तु किसीका कोई वश न था, इसलिये सब लोग चुप हो रहे । सूर्यको भी यह अनुचित कार्य देख कर इतनी ग्लानी हुई, कि वह भी अस्ताचलकी ओर चले गये । रातको बिना किसी धूम-धामके राजाने उम्बर राणाके साथ मैनासुन्दरीका ब्याह कर दिया । अपने राजाको ऐसी सुन्दर रानी मिली हुई देख कर, कोढ़ियों को सीमातीत आनन्द हो रहा था । वे सब राजा-कन्याको साथ ले, उसी तरह हर्ष मनाते, अपने निवास-स्थानको लौट आये ।

राज-कन्यासे विवाह कर लेनेपर, भी उम्बरका विषाद अभी दूर न हुआ था । उसे यह चिन्ता बेतरह सता रही थी, कि मेरे संसर्गसे राज-कन्याकी यह कञ्चन जैसी काया भी नष्ट हो जायगी । उसने एकान्त-मिलनके समय मैनासुन्दरीसे कहा—“हे सुन्दरी ! इसमें कोई सन्देह

नहीं कि . . . हमारे पिताने यह बड़ा ही अनुचित कार्य किया; परन्तु मैं वैसा अविचारी नहीं हूँ । मैं चाहता हूँ कि तुम एक बार अच्छी तरहसे विचार कर लो, ताकि फिर पश्चात्ताप न करना पड़े । हम लोग परिणय-सूत्रमें बंध जानेपर भी, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम आजीवन सुभसे पृथक् रह सकती हो । इसमें किसी प्रकारकी लज्जा या संकोचको स्थान देना ठीक नहीं । तुम अच्छी तरह विचार कर लो । मेरे स्पर्शसे तुम्हें भी यही रोग हो जायगा और तुम भी मेरी ही तरह कुरूप हो जाओगी ! कहो, तुम्हें इन दोमेंसे कौन बात पसन्द है ?”

उम्बरकी यह बातें सुन मैनासुन्दरीकी आँखोंसे अश्रुधारा बह चली । उसने कहा—
“स्वामिन् ! आप ऐसी बातें न कहिये । इन बातोंसे मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है । क्या आप नहीं जानते कि भारतीय रमणियोंका पति ही जीवन सर्वस्व होता है । मैं तन-मनसे

आपकी हो चुकी हूँ । मुझपर आपका पूर्ण अधिकार है । पति-पत्नीके पृथक् रहनेकी कल्पना भी नहीं की जा सकती । हम लोगोंमें जो सम्बन्ध स्थापित हो चुका है, वह मृत्युके बाँद ही भंग हो सकता है । किसकी सामर्थ्य है कि एक सती स्त्रीको उसके पतिसे पृथक् रख सके ? आप इस संकोचको छोड़ दीजिये । मैं आपकी दासी हूँ । आप मेरे नाथ हैं । मेरे प्राण हैं— मेरे जीवन-भन हैं । मैं हर तरहसे आपकी सेवा कर आपको आराम पहुँचाऊँगी । सुख-दुःख और रोग-शोक तो भाग्यकी देन है । जो बदा होगा, वही होगा । हमें अकारण ही उसकी चिन्ता न करनी चाहिये ।”

मैनासुन्दरी और उम्बरमें रात भर इसी तरहकी बातें होती रही । दोनोंने एक दूसरेके हृदयको पहचान लिया । दोनोंके हृदय दाम्पत्य-प्रेमसे पूरित हो गये । मैनासुन्दरीके चेहरे पर दूना तेज चमकने लगा । मानो आज अनाथसे

सनाथ हो गयी थी। सूर्यने भी उदयाचलसे इस सतीके दर्शन कर अपनेको धन्य समझा। मैना-सुन्दरीको न जाने क्यों आजका प्रभात बड़ा ही मनोरम प्रतीत होता था। चारों ओर उसे कुछ नवीनता सी दिखायी देती थी, उसे समझ न पड़ता था कि वह स्वयं बदल गयी है या समूचा संसार ही बदल गया है। आज उसकी भावनाओंका स्रोत दूसरी ही ओर प्रवाहित हो रहा था। आज उसकी मात, गति, पति-देवकेही चरणों में, केन्द्रीभूत हो रही थी। इसीलिये आज उसे समस्त संसार बदला हुआ दिखायी देता था।

प्रभात होतेही उसने बड़े प्रेमसे उम्बर राणाको जगाया। नित्य-कर्मसे निवृत्त होनेके बाद मैनासुन्दरीने अनुरोध किया कि, चलो, हम लोग देव-दर्शन करने चलें। उम्बरने बिना किसी आपत्तिके उसका अनुरोध स्वीकार कर लिया। दोनोंने बड़े प्रेमसे जिन-मन्दिरकी ओर प्रस्थान किया।

श्री ऋषभदेव भगवानके दर्शन कर उम्बर राणा अर्थात् श्रीपालकुमार रंग-मण्डपमें बैठकर स्तुति करने लगे । मैनासुन्दरीने भी निर्मल जलसे स्नान कर परमात्माकी पूजा की । चन्दन कर्पूरादि चढ़ाया । गलेमें पुष्प-माला पहनाकर हाथमें फूलोंका गुच्छा अपित किया । द्रव्य-पूजा करनेके बाद उसने भाव-पूजा की और चैत्यवन्दन कर परमात्माकी स्तुति करने लगी । वह कहने लगी—“हे परमात्मा ! आप जगतमें चिन्तामणि-रत्नके समान हैं । जन्म-जन्मान्तर हमें केवल आपहीका सहारा है । आपहीके अनुग्रहसे प्राणियोंका दुःख-दुर्भाग्य दूर हो जाता है ।”

इस प्रकार स्तुति कर मैनासुन्दरीने कायोत्सर्ग किया । उसी समय प्रभुके गलेकी पुष्प-माला और हाथका श्रीफल अपने आप श्रीपालकी ओर आता हुआ दिखायी दिया । श्रीपालने तुरन्त खड़े होकर वे दोनों ले लिये ।

मैनासुन्दरीने कायोत्सर्ग पूर्ण किया । पतिके हाथमें पुष्प-माला और श्रीफल (बिजोरा) देखकर मैनासुन्दरीको बहुतही आनन्द हुआ । उसने कहा कि निःसन्देह यह शासन-देवताओंकी प्रसन्नताका ही फल है ।

जिन-मन्दिरके पासही पौशध-शालामें गुरु महाराज देशना दे रहे थे । परमात्माको पुनः वन्दन कर वे दोनों वहाँ गये और गुरुदेवको वन्दना कर उनके निकट स्थान ग्रहण किया । गुरुदेवने दोनोंको धर्मलाभ प्रदान कर उपदेश देते हुए कहा—“तुम्हें अनेक जन्मोंके बाद यह मनुष्यका जन्म मिला है । इसलिये निद्रा और अभिमानका त्याग कर इसे सार्थक करो । ऐसा अपूर्व अवसर जो लोग यों ही खो देते हैं, वे लोग मक्खीकी तरह हाथ मल-मल कर पछताते हैं । ध्यान रखो कि धर्माराधनका यह अवसर एक बार हाथसे निकल जानेपर फिर पश्चात्तापके सिवा और कुछ नहीं हाथ आता ।”



“हे राज-पुत्री ! अवतक तो तू अनेक दास-दासियोंके साथ यहाँ आती थी । आज हम तुझे अकेली क्यों देख रहे हैं ?”

(पृष्ठ ४१)

यह उपदेश देते समय गुरुदेवकी दृष्टि मैना-सुन्दरी पर पड़ी । वे तुरन्त उसे पहचान गये । उन्होंने पूछा—“हे राज-पुत्री ! अबतक तो तू अनेक दास-दासियोंके साथ यहाँ आती थी । आज हम तुझे अकेली क्यों देख रहे हैं ?”

मैनासुन्दरीने गुरुदेवको सारा वृत्तान्त कह सुनाया । अन्तमें वह बोली—“महाराज ! मुझे और किसी बातका दुःख नहीं है । दुःख केवल यही है, कि लोग अज्ञानताके कारण जिन-शासनकी निन्दा करते हैं । यह मुझसे सहा नहीं जाता ।”

गुरुने कहा—“हे बाला ! संसारमें सभी तरहके मनुष्य हैं । तुझे इसके लिये चिन्ता न करनी चाहिये । धर्मके प्रभावसे चिन्तामणि रूप यह पुरुष तेरे हाथ लगा है । यह बहुत ही भाग्यशाली है । यथासमय यह राजाओंका राजा होगा और सब लोग इसके चरणोंमें आ-आकर प्रणाम करेंगे ।”

मंनसुन्दरीने गुरुदेवसे प्रार्थना की—“महाराज ! मुझे आपकी बातोंपर पूर्ण विश्वास है । जो आपने बतलाया है, वह अवश्य ही किसी दिन सत्य प्रमाणित होगा । किन्तु इस समय शास्त्रोंको देखकर कोई ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे आपका यह श्रावक व्याधि-मुक्त हो सके ।”

गुरुने कहा—“जड़ी, बूटी, मंत्र, तन्त्र, यन्त्र, विद्या और औषधि यह किसीको बताना उत्तम मुनिका आचार नहीं । तथापि यह पुरुष परम धर्म-निष्ठ होगा, इसलिये मैं तुम्हें एक यन्त्र बतलाता हूँ । यह यन्त्र बहुत ही चमत्कारिक है ।”

इतना कह, गुरु महाराजने शास्त्र और धर्म-ग्रन्थोंका मन्थन कर सिद्धचक्र नामक एक यन्त्र खोज निकाला । उस यन्त्रमें “ओं ह्रीं” सहित अरिहन्तादि नवपद और गुरु द्वारा ज्ञान करने योग्य और भी कई मन्त्राक्षर थे । उस यन्त्रके मध्य भागमें अरिहन्त और चारों

दिशाओंमें सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सांधु-पदकी स्थापना की गयी थी । चारों विदिशाओंमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार पदोंकी स्थापना की थीं । गुरुदेवने बतलाया, कि इसे 'अष्ट-दल-कमल' यन्त्र कहते हैं । यह सब यंत्रोंमें श्रेष्ठ है । विशुद्ध मनसे इसकी आराधना करनेसे समस्त कार्य सिद्ध होते हैं । इस यन्त्रकी आराधनाके लिये आश्विन शुक्ल ७ से आश्विन शुक्ल पूर्णिमा तक और चैत्र शुक्ल सप्तमीसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमा तक नव-नव दिन आयम्बिल व्रत करना चाहिये । इन नव दिनोंमें प्रति दिन तीनों काल श्रीजिनेश्वरकी अष्ट प्रकारी पूजा करनी चाहिये । भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्यका पालन, प्रत्येक पदकी बीस-बीस नवकार बालियाँ गिनना, त्रिकाल देव-वन्दना, दोनों समय प्रति-क्रमण और गुरुकी बैयावच्च भी करनी चाहिये । इनके अतिरिक्त धर्मोपदेश सुनना, शरीरको वशीभूत रखना, विचार-पूर्वक बोलना और सिद्धचक्र यन्त्रको

पञ्चामृतसे प्रक्षालन कर उसका पूजन करना भी आवश्यक है । नवें अर्थात् अन्तिम दिनमें और दिनोंकी अपेक्षा अधिक भक्ति करनी चाहिये ।

इस प्रकार नव ओली अर्थात् ८१ आयंबिल करनेसे नवपदकी आराधना समाप्त होती है । इस तपमें सब मिलाकर साढ़े चार वर्षका समय लगता है । तपकी समाप्ति होनेपर यथाशक्ति दान-धर्म करना चाहिये । इससे जन्म-जन्मान्तरमें सब प्रकारके सुखोंकी प्राप्ति होती है ।

इस यन्त्रकी आराधनाके फलके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि इससे समस्त दुःखोंका नाश होता है । इसके प्रक्षालन-जलसे ८४ प्रकारके वायु और भगन्दरादि महा व्याधियोंसे छुटकारा मिलता है । इससे निर्धनोंको धनकी और निःसन्तानोंको सन्तानकी प्राप्ति होती है ।

इस प्रकार आराधन-विधि और महिमा

बतलाकर गुरुदेवने यह महा-यन्त्र लिखकर मैना-सुन्दरीको प्रदान किया । उस समय वहाँ जो श्रावक-गण उपस्थित थे, उन्हें उपदेश देते हुए गुरुने कहा—“यह दोनों स्त्री-पुरुष बहुतही गुणनिधान-हैं। इनकी यथाशक्ति तुम लोग सेवा करना । इस संसारमें साधमिक भाईसे बढ़कर और कोई नाता नहीं हो सकता । यही वास्तविक नाता है । स्वधर्मावलम्बी बन्धुको सहायता करनेसे समकित भी निर्मल हो जाता है ।”

गुरुदेवका यह उपदेश सुन श्रावकोंके हृदय में श्रीपाल और मैनासुन्दरीके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई । वे उन्हें अपने घर ले गये और वहाँ सिद्ध-चक्रकी आराधनाके लिये सब प्रकारकी सुविधायें कर दी । मैनासुन्दरी और श्रीपाल इसके लिये उन्हें धन्यवाद दे, आराधना-कार्यमें लीन हुए ।



रोगसे मुक्ति ।



पाल और मैनासुन्दरीने गुरुके आदेशानुसार आश्विन शुक्ला सप्तमीसे ओंली करना आरम्भ किया और षट्-विंशियोंका त्याग कर रोज आयम्बिल करने लगे । साथही मैनासुन्दरी श्रीअरिहन्त भगवानकी अष्ट-प्रकारी पूजा भी करने लगी । इस प्रकार एकाग्रता-पूर्वक जिन-भक्ति करनेसे पाप-प्रकृति का नाश होने लगा । पहले आयम्बिलमें सिद्ध-चक्रके न्हवनसे रोगका मूल नष्ट होकर अन्तरका दाह शान्त हुआ । दूसरे आयम्बिलमें विरूप चमड़ा सुधर कर उसका रंग परिवर्तित होने लगा । इस प्रकार ज्यों-ज्यों समय बीतता

गया, त्यों-त्यों श्रीपालकी सुन्दरता बढ़ती गयी और रोग शमित होता गया । जब नव आय-म्बिल पूरे हुए तब समस्त व्याधियाँ दूर हो गयीं और शरीर पूर्णतः रोगमुक्त हो गया । अब श्रीपालकी कञ्चन सी काया देखकर सब लोग आश्चर्य करने लगे ।

मैनासुन्दरीने कहा—“स्वामिन् ! यह सब गुरुदेवका ही प्रताप है । संसारमें माता-पिता, बन्धु-बान्धव, स्त्री-पुत्र प्रभृति अनेक शुभचिन्तक होते हैं; किन्तु गुरुके समान कृपालु और हितैषी दूसरा कोई नहीं होता । गुरुदेव इह-लोकके कष्ट दूर करते रहते हैं, परलोकके कष्टोंसे बचाते हैं, संदुबुद्धि प्रदान करते हैं और तत्त्वा-तत्त्व एवम् कर्तव्याकर्तव्य बतलाते हैं । ऐसे गुरुदेवको और ऐसे जैन धर्मको धन्य है ।”

श्रीपालने भी मैनासुन्दरीकी बातोंका अनु-मोदन किया और धर्मकी प्रशंसा करते हुए दोनों बोधि-बीज-सम्यक्त्वको प्राप्त हुए । इसके

बाद उन्होंने अपने दलके ७०० कोढ़ियों पर भी सिद्धचक्रका न्हवन-जल छिड़का । यह जल पड़तेही वे भी रोग-मुक्त हो गये । कुछ दिनोंके बाद उन सबोंने अपने-अपने घर जानेकी आज्ञा माँगी । श्रीपालने सहर्ष आज्ञा प्रदान कर सबको उनके घर भेज दिया ।

एक दिन श्रीपाल कुमार जिन-मन्दिरमें दर्शन करने गये । दैवयोगसे लौटते समय मार्गमें मातासे भेंट हो गयी । श्रीपालने बहुत ही आदर और प्रेमसे मातांको प्रणाम किया । इस भेंटसे दोनोंको असीम आनन्द हुआ । उनके हृदय पुलकित हो उठे ! कंठ गद्गद् हो गया और नेत्रोंसे हर्षके आँसू बह चले । इसी समय वहाँ मैनासुन्दरी भी आ पहुँची । आकार-प्रकारसे उसने तुरन्त ही अपनी सासको पहचान लिया । बड़ेही आदरसे पैर छुए । सासने भी शिर पर हाथ फेर मंगल-आशीर्वाद दिया । पुत्रकी निरोगिता और पुत्र-वधूकी



उसने तुरन्त ही अपनी सासको पहचान लिया ।
बड़े ही आदरसे पैर छुए । सासने भी शिर पर हाथ
केर मंगल-आशीर्वाद दिया ।

[पृष्ठ ४८]

सुशीलता देख रानी कमलप्रभाका हृदय हर्षके मारे उछलने लगा । श्रीपालने कहा—“माताजी ! यह सब आपकी पुत्र-वधूकाही प्रताप है । इसीके प्रतापसे मैं निरोग हुआ और इसीके उपदेशसे मुझे जैन धर्मकी प्राप्ति हुई है । यह सुन कमलप्रभाने पुनः अपनी पुत्र-वधूको हृदयसे लगाकर आशीर्वाद दिया ।

कमलप्रभा अपने पुत्रकी उन्नति, रोग-मुक्ति और विवाहका समाचार पहले ही सुन चुकी थी, इसलिये यह सब बातें उसे बतलानी न पड़ीं । उसने श्रीपालको अपनी आत्म-कथा बतलाते हुए कहा—“पुत्र ! तुझे शायद स्मरण होगा, कि कोढ़ियोंके संसर्गसे जब तुझे भी यह घृणित रोग हो गया, तब मैं तुझे कोढ़ियोंको सौंप, वैद्यकी खोजमें निकल पड़ी थी । रास्तेमें मैंने सुना कि कौशाम्बीमें एक अच्छे वैद्य रहते हैं, जो इस व्याधिको निर्मूल कर सकते हैं । यह सुन, मैंने कौशाम्बी नगरीका रास्ता लिया ।

रास्तेमें मुझे एक ज्ञानी गुरु मिले । मैंने उन्हें नमस्कार कर निवेदन किया कि—“हे भगवन् ! दुर्भाग्यवश मैंने अबतक अनेक कष्ट सहन किये हैं । पतिका वियोग हुआ, राज्य गया, ऐश्वर्य गया, सुख-समृद्धिसे हाथ धोने पड़े और अन्तमें अनाथकी भाँति वन-वन भटकना पड़ा ; किन्तु इससे भी दैवको सन्तोष न हुआ । मेरा एकमात्र पुत्र, जिसे मैं दुःखके दिनोंमें देखकर अपना दुःख भूल जाती थी, जो मेरे जीवनका एकमात्र सहारा था, वह भी कुष्ठ-व्याधिसे ग्रसित हो गया । हे कृपानिधान ! कृपया बतलाइये, कि मेरा वह लाल इस रोगसे कब मुक्त होगा ?

गुरु महाराज बड़े ही ज्ञानी थे । उन्होंने मुझे सान्त्वना देते हुए कहा—“तुम्हें अब पुत्रके दुःखसे दुःखित होनेकी आवश्यकता नहीं है । तुम्हारे पुत्रको कोढ़ियोंने बहुत ही यत्नसे रक्खा था । उन्होंने उसे अपना राजा बनाया था । उस समय उम्बर राणाके नामसे उसने यथेष्ट कीर्ति

लाभ की थी । कोढ़ियोंकी चेष्टा और अपने सौभाग्यके कारण मालव-राजकी राज-कन्यासे उसका विवाह भी हो गया । बादको पत्नीके कहनेसे तुम्हारे पुत्रने आयम्बिलका तप और सिद्धचक्रकी आराधना की । इससे वह अब पूर्णातः रोग-मुक्त हो गया है । इस समय वह उज्जयिनीमें रहता है । सिद्धचक्रके प्रतापसे भविष्यमें उसकी बड़ी उन्नति होगी । वह अनेक राज्य प्राप्त करेगा और किसी समय राजाओंका राजा होगा ।”

गुरु महाराजकी यह बातें सुन, मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ । मैं तुरन्त ही इस ओर चल पड़ा । यहाँ तुम्हें पाकर मुझे ऐसा आनन्द हो रहा है, जैसे कृपणको खोया हुआ धन मिल गया हो—अन्धको आँखें मिल गयीं हो !”

माताकी यह बातें सुन, श्रीपाल और मैना-सुन्दरीको परम आनन्द हुआ । माताको साथ ले, वह अपने निवास-स्थानमें गये और वहाँ तीनों जन आनन्द-पूर्वक रहने लगे ।

एक दिन तीनों जिन-मन्दिरमें दर्शन करने गये । दर्शन करनेके बाद वे चैत्यवन्दन करने लगे । श्रीपाल मधुर कण्ठसे चैत्यवन्दन कर रहे थे और सांस-बहू उसे प्रेम-पूर्वक सुन रही थीं । इसी समय मैनासुन्दरीकी माता रूपसुन्दरी भी वहाँ दर्शन करने आ पहुँची ।

पाठक शायद अभी रूपसुन्दरीको भूले न होंगे । जिस समय प्रजापालने क्रुद्ध हो कोढ़ीके साथ मैनासुन्दरीका ब्याह कर दिया, उस समय से उसे कुछ विरक्तिसी उत्पन्न हो गयी । वह अपने मायके चली आयी और पुत्रीके दुःखसे दुःखी रहने लगी । आज जिन-वाणीका स्मरण होनेपर वह अपने समस्त दुःखोंको भूलकर दर्शन करने आयी थी । दर्शन कर जिन-मन्दिरसे लौटते समय मैनासुन्दरीपर उसकी दृष्टि पड़ी । वह तुरन्त उसे पहचान गयी; किन्तु उसके समीप किसी पर-पुरुषको देख, वह मनमें न जाने क्या-क्या सोचने लगी ।

उसने अपने दामादको, कभी देखा न था । केवल इतना ही सुना था, कि किसी कोढ़ीक्रे साथ मैनासुन्दरीका विवाह कर दिया गया है । इसी लिये, मैनासुन्दरीके 'साथ' इस समय किसी सुन्दर पुरुषको देख, वह चौंक पड़ी । वह सोचने लगी,—“कि अवश्य, मैने उस कोढ़ी पतिका त्याग कर, इस सुन्दर पुरुषको अपना तन, मन अर्पण कर दिया है ।” इस विचारसे उसे बहुतही खेद हुआ । वह अपने मनमें कहने लगी—“हे ईश्वर ! तूने इस कुल-कलङ्किनी पुत्रीकी माता मुझे क्यों बनाया ? यह उत्पन्न होतेही क्यों न मर गयी कि, आज मुझे इस तरह परिताप तो न करना पड़ता ।” इस दुःखके कारण उसकी आँखोंमें आँसू भर आये और वह वहीं बैठकर रोने लगी ।

चैत्यवन्दन पूर्ण होनेपर मैनासुन्दरीका ध्यान अपनी माताकी ओर आकर्षित हुआ । वह तुरन्त ही उसके पास दौड़ गयी । परन्तु रूपसुन्दरीने

तो उसे स्पर्श करना एवं उससे बोलना भी पाप समझा । मैनासुन्दरी तुरन्त इसका कारण समझ गयी । उसने माताके पैर छूकर कहा—
 “माताजी ! आप हर्षके बदले शोक क्यों कर रही हैं ? जिनेश्वर भगवानकी असीम कृपासे मेरे पति-देव रोग-मुक्त हो गये हैं । किन्तु हमलोगों को जिन-मन्दिरमें सांसारिक बातें न करनी चाहियें । इससे आशातना लगती है । आप दर्शन कर, बाहर आइये और हमलोगोंके साथ हमारे घर चलिये । वहाँपर मैं आपसे यह सब बातें विस्तार-पूर्वक कहूँगी । ”

रूपसुन्दरीको इन बातोंसे कुछ सन्तोष हुआ । वह मैनासुन्दरीके साथ उसके घर गयी । वहाँ श्रीपाल और कमलप्रभाके सम्मुख उसने अपनी मातासे सब हाल कह सुनाया । सच्ची बातें मालूम होनेपर रूपसुन्दरीको बहुत ही आनन्द हुआ । वह बारंबार अपने और अपनी पुत्रीके भाग्यको सरहाने लगी ।

अन्तमें कमलप्रभाने रूपसुन्दरीसे कहा—

“आपके कुलको धन्य है । आपकी कुलीन पुत्रीने हमारे कुलका उद्धार किया है । हम लोग इसके बहुत ही ऋणी हैं । इसीके कारण हमें जैनधर्म की प्राप्ति हुई है और इसीने हमें समस्त दुःखों से मुक्त किया है ।”

पुत्रीकी यह प्रशंसा सुन रूपसुन्दरीको बहुत आनन्द हुआ । उसने कहा,—“यह हमारे और मैनासुन्दरीके सुकृत्योंकाही परिणाम है कि, जो बिगड़ा हुआ था, वह भी बन गया और दुःख सुखके रूपमें परिणत हो गया । मुझे अब केवल एक ही बात जाननेकी अभिलाषा है । मैं आपके कुल और वंशसे परिचित नहीं हूँ । यदि आप लोग मुझे अपने कुल और वंशका परिचय देंगे तो बड़ी कृपा होगी ।”

रूपसुन्दरीकी यह बात सुन, कमलप्रभाने अपना समस्त पूर्व-वृत्तान्त विस्तार-पूर्वक कह सुनाया । रूपसुन्दरीको जब यह मालूम हुआ

कि उसकी पुत्रीका विवाह एक राज-कुमारके ही साथ हुआ है, तब उसके आनन्दकी सीमा न रही । उसने कहा—“वास्तवमें मेरी पुत्री परम सौभाग्यवती है । इसने दोनों कुलका मुख उज्ज्वल कर दिया है ।”

रूपसुन्दरी इन लोगोंसे बिदा हो, जब अपने निवास-स्थानमें पहुँची, तब उसने अपने भाई पुण्यपालसे यह सब बातें कह सुनायीं । सुनकर उसे बहुत ही आनन्द हुआ । वह अपनी चतुरंगिनी सेना लेकर बड़े आडम्बरसे श्रीपालके निवास-स्थानमें गया और आग्रह-पूर्वक श्रीपाल, मैनासुन्दरी और कमलप्रभाको अपने महलमें ले आया । वहाँ उसने इन लोगोंके लिये एक बहुत बड़े निवास-स्थानका प्रबन्ध कर दिया । इनकी समस्त सुविधाओंपर ध्यान रखने लगा । अब अपनी माता और पत्नी समेत श्रीपाल कुमारके दिन यहाँ बड़े आनन्दसे कटने लगे ।

एक दिन श्रीपाल और मैनासुन्दरी महलके

भरोखेमें बैठे हुए थे । चौकमें नाना प्रकारके नाच-गान हो रहे थे । भरोखेसे दोनों जन इसका आनन्द ले रहे थे । इसी समय बगीचे से लौटते हुए राजा प्रजापालकी सवारी वहींपर आ निकली । नाच-गान होते देख, क्षण भरके लिये वह वहाँ ठहर गया । जब उसकी दृष्टि उस भरोखे पर पड़ी, तब उसे स्वाभाविक ही यह 'जाननेकी इच्छा हुई, कि यह दोनों कौन हैं ? ध्यान-पूर्वक देखतेही वह मैनासुन्दरीको पहचान गया ; किन्तु उसके पास देव-कुमार जैसे पुरुष को बैठा हुआ देख, उसे बहुत ही दुःख हुआ । वह भी रूपसुन्दरीकी भाँति भ्रममें पड़ गया । उसे इस बातके लिये परिताप होने लगा कि—
“मैं अविचार-पूर्वक क्या कर बैठा ? क्यों मैंने क्रोधमें आकर कोढ़ीके साथ इसका ब्याह कर दिया ? निःसन्देह यह मेरे ही दुष्कर्मों का परिणाम है । मेरे ही कारण मेरे कुलमें यह कलङ्क लगा !”

इन विचारोंके कारण राजा प्रजापालका चेहरा फीका पड़ गया । पुण्यपाल दूरसे राजाकी भाव भंगियोंका निरीक्षण कर रहा था । इस अवसरको उपयुक्त समझकर वह राजा प्रजापालके पास गया और कहने लगा—“हे राजेन्द्र ! आप इतने उदास क्यों हो रहे हैं ? अन्दर आइये और अपनी कन्या तथा दामादसे मिलकर हर्ष प्राप्त कीजिये । आपके दामाद सिद्धचक्रके प्रतापसे रोग-मुक्त हो गये हैं । उनकी सभी विपत्तियोंका अन्त आ गया है ।” इसके बाद उसने राजा प्रजापालको सब बातें विस्तार-पूर्वक कह सुनायीं और सम्मान-पूर्वक उसे अपने महलमें लिधा ले गये ।

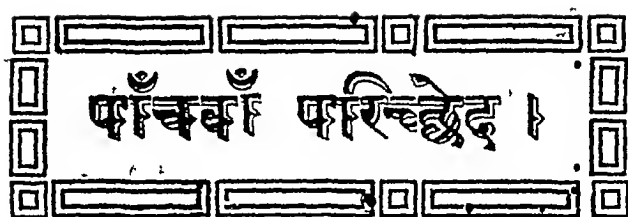
पुण्यपालकी बातें सुन राजा प्रजापालको बड़ा आनन्द हुआ । महलमें पहुँचनेपर वह श्रीपाल और मैनासुन्दरीसे सहर्ष मिला । जैनधर्मकी प्रशंसा करते हुए उसने मैनासुन्दरीसे कहा—“पुत्री ! तूने राज-सभामें जो बातें कही थीं, वे बिलकुल

सच थीं । मैंने अज्ञानताके कारण जो बातें कहीं थीं, वे ठीक न थीं । तुम्हे दुःख देनेमें मैंने कोई कसर न रखी थी; परन्तु वही सब बातें तेरे लिये सुखका कारण हो गयीं । 'मुझे यह देखकर विश्वास हो गया है कि संसारमें कर्मका ही प्राधान्य है । मनुष्यका सोचा हुआ कुछ नहीं होता । मैंने मूर्खतावश अपना प्रभाव दिखानेकी व्यर्थ ही चेष्टा की थी । मैं अब अपनी भूल समझ गया । मुझे अपने दुष्कर्मके लिये ब्रह्म ही पश्चात्ताप हो रहा है ।”

मैनासुन्दरीने प्रेम-पूर्वक कहा—“पिताजी ! इसमें आपका कोई दोष नहीं है । संसारके प्राणी मात्र कर्मके अधीन हैं । राजा और रंक दोनोंही उसके निकट समान हैं । मेरे भाग्यमें जितना दुःख भोगना लिखा था, उतना दुःख मैंने भोग लिया । जब सुखके दिन आये तब पुनः सुखकी प्राप्ति हुई । इसके लिये आप जरा भी खेद न करें ।

इसके बाद राजा प्रजापाल रानी रूपसुन्दरीसे मिला । वह रुष्ट हो गयी थी, इसलिये राजाने उसके निकट अपना पश्चात्ताप प्रकट कर उसे मना लिया । इसके बाद वह शीघ्र ही बड़ी धूम-धामसे श्रीपाल और मैनासुन्दरीको अपने महलमें ले गया । वहाँ वे सब लोग आनन्द-पूर्वक रहने लगे । इस घटनासे समुचे शहरमें जैन धर्मका जय-जयकार होने लगा । मैनासुन्दरीकी भी चारों ओर भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी ।





विदेश-यात्रा ।



एक दिन सन्ध्याके समय थोड़ेसे चुने हुए सवारोंके साथ श्रीपालकुमार शहरमें घूमने निकले । इस समय उन्हें किसी प्रकारका कष्ट न था । वे राजसी ठाठसे रहते थे । दास-दासियाँ हुक्म बजानेके लिये हाथ बाँधे खड़ी रहती थीं । पानी माँगने पर दूध मिलता था । कहनेका तात्पर्य यह कि वे सब तरहसे सुखी थे । ऐसी अवस्थामें उनका रूप-सौन्दर्य बढ़ जाना भी स्वाभाविक था । जिस समय वे घोड़ेको नचाते हुए शहरकी सड़कोंसे निकले, उस समय उज्जैनकी प्रजा उन्हें देखनेके लिये उमड़ पड़ी । रास्तेमें मकानोंकी खिड़कियाँ, झरोखों और छतोंमें जहाँ देखिये, वहीं स्त्री-

पुरुषोंके झुण्ड खड़े दिखायी देते थे । जब तक श्रीपालकी सवारी दूर न निकल जाती, तब तक लोग उनको ओर टक-टकी लगाये देखा करते । कहीं उनपर पुष्प बरसाये जाते थे और कहीं उनकी जय पुकारी जाती थी । समूचा शहर उस समय हर्ष और उल्लासके तरंगोंमें प्रवाहित हो रहा था ।

जिस समय यह सवारी एक चौराहे पर पहुँची, उस समय दैव-योगसे एक ऐसी घटना घटित हुई, जिसने श्रीपालकी जीवन-धाराको ही बदल दिया । श्रीपालने देखा कि एक बुढ़िया और उसकी कई पुत्रियाँ खड़ी हुई हैं । श्रीपाल को देखकर एक लड़कीने उस बुढ़ियासे पूछा—
 “माता ! छोड़ेको नचाता हुआ यह जो सुन्दर पुरुष जा रहा है, सो कौन है ? इन्द्र है, चन्द्र है या कोई चक्रवर्ती है ? बुढ़ियाने उच्च स्वरसे उत्तर दिया कि—“बेटी ! यह हमारे राजाजीके दामाद हैं ।”

बुढ़ियाकी यह बात श्रीपालने सुन ली। उन्हें इसी समय स्मरण हो आया कि—“जो लोग अपने गुणसे प्रसिद्ध होते हैं, वे उत्तम : कहलाते हैं। जो लोग अपने पिताके नामसे प्रसिद्ध होते हैं, वे मध्यम होते हैं, जो लोग अपने मामाके नामसे प्रसिद्ध होते हैं, वे अधम कहलाते हैं और जो लोग अपने श्वसुरके नामसे प्रसिद्ध होते हैं, वे अधमाधम कहलाते हैं। श्रीपाल अपने मनमें कहने लगे—“कि मुझे धिक्कार है, कि ससुरालमें रहनेके कारण अपने गुण और अपने नामसे नहीं बल्कि ससुरके नामसे पहचाना जाता हूँ। इस अवस्थाका जैसे हो वैसे अन्त लाना चाहिये।

इस विचारके कारण श्रीपालकुमारका चित्त उदास हो गया। जिस समय वे महलमें पहुँचे, उस समय भी उनकी यही अवस्था थी। पुण्यपाल उन्हें देखतेही ताड़ गया कि आज अवश्य कोई नयी बात हुई है। उसने श्रीपालसे

पूछा—“क्यों कुमारजी ! आज आपके चेहरे पर उदासीनताकी श्याम घटा क्यों दिखायी दे रही है ? आपके हृदयमें यदि कोई नयी भावना उत्पन्न हुई हो, तो उसे तुरन्त व्यक्त करें। हमलोग उसकी पुर्तिके लिये भरसक चेष्टा करेंगे। क्या आप चम्पा नगरीका राज्य तो हस्तगत नहीं करना चाहते ? आज्ञा हो तो, इसके लिये भी हम तैयार हैं।”

“श्रीपालने कहा—“चम्पा नगरीका राज्य तो अवश्य किसी दिन हस्तगत करना है, किन्तु ससुरकी सहायतासे राज्य प्राप्त करना ठीक नहीं। मैं पहले विदेशकी यात्रा करूँगा। अनेक देश देखूँगा। अपने बाहु-बलसे धनोपाजन करूँगा। फिर बादको जैसा उचित प्रतीत होगा, वैसा करूँगा।

इसी समय वहाँ कमलप्रभा आ पहुँची। उसने पुत्रको विदेश-गमनकी तैयारी करते देख, कहा—“पुत्र ! यदि तू विदेश जायगा, तो मैं

भी तेरे साथ चलूँगी । तू ही एकमात्र मेरा जीवन-धन है । मैं जाते-जी तूझे अपनी आँखोंके ओट न होने दूँगी ।”

श्रीप्रालकुमारने नम्रता-पूर्वक कहा,—“माता जी ! आपका कहना ठीक है; किन्तु परदेशमें किसी प्रकारका बन्धन रहनेसे स्वेच्छा-पूर्वक धनोपाजन करनेमें बाधा पड़ती है । आप समझदार हैं । मैं भी अब नादान नहीं हूँ । मुझे केवल आपके आर्शावाद् ही आवश्यकता है । मैं शीघ्र ही अनेक प्रकारकी वृद्धियाँ प्राप्त कर आपकी सेवामें उपस्थित होऊँगा ।

पुत्रकी यह बातें सुन कमलप्रभने तुरन्त उसे आज्ञा दे दी । उसने समयोचित उपदेश देते हुए कहा—“जहाँ तक हो सके, शीघ्रही लौट आना । विदेशमें किसी प्रकारका कष्ट या संकट आ पड़े तो नवपदका ध्यान करना । रातको जागते रहना और निरन्तर सावधान रहना । मैं आशी-

वाद देती हूँ कि सिद्धचक्रकी अधिष्ठायक देव-देवियाँ मार्गमें तुम्हारी रक्षा करें ।”

इस प्रकार माताने तो आज्ञा दे दी; किन्तु मैनासुन्दरी किसी प्रकार श्रीपालको छोड़ना न चाहती थी । उसने कहा—“प्राणनाथ ! मैं तो आपके साथही रहूँगी । ज्ञाया और कायाको एक दूसरेसे पृथक् नहीं किया जा सकता । रास्तेमें आपकी सेवा करनेवाला भी तो कोई चाहिये । मैं एक क्षणभी आपका वियोग सहन न कर सकूँगी । दावानलके तापसे विरहानलका ताप कहीं अधिक प्रखर होता है ।”

श्रीपालने मैनासुन्दरीको आश्वासन देकर कहा—“प्रिये ! तुम्हें यहीं रहना उचित है । माताकी सेवाके लिये भी तुम्हारी उपस्थिति आवश्यक है । मैं शीघ्रही लौट आऊँगा । इस समय तुम्हें मेरे साथ चलनेका आग्रह न करना चाहिये ।”

मैनासुन्दरीने पतिकी आज्ञा सहर्ष मान ली ।

उसने कहा—“यदि आपकी यही आज्ञा है कि, मैं साथ न चलूँ तो मैं ऐसाही करूँगी; किन्तु आप यह निश्चय जानियेगा, कि मेरा शरीर यहाँ और मेरा प्राण आपके साथ रहेगा । अधिक क्या कहूँ ? शीघ्र वापस आइयेगा । यदि विदेश में नयी स्त्रीयोंसे व्याह कर लें, तो इस दासीको न भूल जाइयेगा । मैं आजसे एक बार भोजन करूँगी, ज़मीनपर शयन करूँगी, शृंगार त्याग दूँगी और सादगीसे रहूँगी । जब सिद्धचक्रके प्रतापसे आपके पुनः दर्शन होंगे तब शृंगार धारणकर अपनेको धन्य समझूँगी ।

इस प्रकार सबसे बिदा ग्रहण कर, श्रीपालकुमार केवल अपनी ढाल तलवार लेकर प्रातःकालके समय चन्द्र-स्वर और शुभ मुहूर्तमें घरसे निकल पड़े । अनेक नगरोंको देखते, भ्रमणका आनन्द प्राप्त करते हुए कुछ दिनोंके बाद वे एक पर्वतके शिखर पर जा पहुँचे । वहाँ सघन वृक्षोंकी घनी घटामें चम्पक-वृक्षके

नीचे एक विद्य-साधक दोनों हाथ ऊपरको उठाये जप कर रहा था । कुमारको देखतेही जप पूरा कर पहले उसने प्रणाम किया । फिर वह कहने लगा—“हे सत्पुरुष ! आप बहुतही अच्छे अवसर पर यहाँ आ पहुँचे हैं । निःसंदेह आपसे मुझे अपने कार्यमें बड़ी सहायता मिलेगी ।

श्रीपालने कहा—“मेरे योग्य जो कार्य-सेवा हो, सहर्ष सूचित करे । परोपकारके लिये अनेक महापुरुषोंने अपना राज्य, धन और प्राण तक दे दिया है ।

साधकने कहा—“हे कुमार ! गुरुदेवने कृपाकर मुझे एक विद्या प्रदान की थी । मैंने उसे सिद्ध करनेके लिये बहुत चेष्टा की ; पर वह सिद्ध नहीं होती । इसकी साधनाके लिये एक उत्तर-साधक की आवश्यकता है । बिना उत्तर-साधकके चित्त स्थिर नहीं होता और बिना चित्तकी स्थिरताके विद्याका सिद्ध होना भी असम्भव है । अतः मैं

चाहत हूँ कि आप मेरे लिये थोड़ासा कष्ट उठा कर उत्तर-साधक होना स्वीकार करें ।

कुमारने तुरन्तही यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । वे कहने लगे—“आप स्थिर चित्तसे विद्या-साधन कीजिये । जब तक मैं उत्तर-साधक रहूँगा, तब तक किसीकी मजाल नहीं कि आपके कर्त्यमें किसी प्रकारकी बाधा दे सके ।

अब कुमारकी सहायतासे वह साधक, विद्या की साधना करने लगा । इस बार बहुतही अल्प समयमें वह विद्या सिद्ध हो गयी । इसके प्रतिकूल स्वरूप उस विद्याधरने श्रीपालको आग्रहपूर्वक दो औषधियाँ प्रदान कीं । एकका नाम था ‘जल-तरणी’ और दूसरीका नाम था ‘शस्त्र-घात-निवारिणी’ यह दोनों चीजें श्रीपालके लिये आगे चलकर बहुतही उपयोगी प्रमाणित हुई ।

विद्या-सिद्धी हो जाने पर विद्याधर और श्रीपाल उस स्थानसे चल पड़े । मार्गमें उन्हें

एक धातुर्वादी मिला । वह विद्याधरकी बतलायी हुई विधि के अनुसार रस सिद्ध कर रहा था । विद्याधरको देखते ही उसने कहा—“आपकी बतलायी हुई विधि के अनुसार रस सिद्ध करनेकी बड़ी चेष्टा की ; पर रस सिद्ध नहीं होता ।” श्रीपालने कहा—“अच्छा, अब एक बार मेरे सामने चेष्टा कीजिये ।” तदनुसार श्रीपालके सम्मुख कार्यारम्भ करनेपर तुरन्त ही रस सिद्ध हो गया । इस रससे उस धातुर्वादीने अपरिमित सोना तैयार किया । उसने कुमारसे अनुरोध किया कि—“इसमेंसे आप जितना सोना ले सकें, सहर्ष ले लें ।” राजकुमारने सोनाका भार वहन करना ठीक न समझनेसे इन्कार कर दिया । फिर भी धातुर्वादीने थोड़ासा सोना उनके छोरमें बाँध ही दिया । अनन्तर श्रीपालकुमार वहाँसे बिदा हो आगे चले ।

कुछ दिनोंके बाद वे घूमते-घूमते भरूच नगरमें जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने सोना बेचकर

सुशोभित वस्त्र और शस्त्रास्त्र मोल लिये । विद्याधरकी दी हुई उन दोनों औषधियोंको भी उन्होंने सोनेके ताबीजमें मँढ़ाकर अपने हाथमें बाँध लिया । इसके बाद वे आनन्द-पूर्वक नगरमें घूमने और कौतुक देखने लगे ।

दैव-योगसे इसी समय एक दूसरी घटना घटित हुई । कौसम्बी नगरमें धवल नामक एक धनी-मानी व्यापारी रहता था । अगणित धन-राशिका अधिकारी होनेके कारण लोग उसे धन-कुबेरके नामसे सम्बोधित करते थे । ऊँट और गाड़ियोंमें किराना लादकर व्यापार करता हुआ वह भरूच शहरमें आ पहुँचा । यहाँ उसने सब किराना बेच दिया । इस व्यापारमें उसे बहुत लाभ हुआ । अब उसने विचार किया, कि यहाँसे व्यापारकी अन्यान्य चीजें खरीद कर जल-साग द्वारा कहीं विदेश जाना चाहिये ! वहाँ यह चीजें बेचकर धनोपार्जन करना चाहिये । निदान, यह विचार स्थिर होते ही उसने पाँच सौ नौकायें

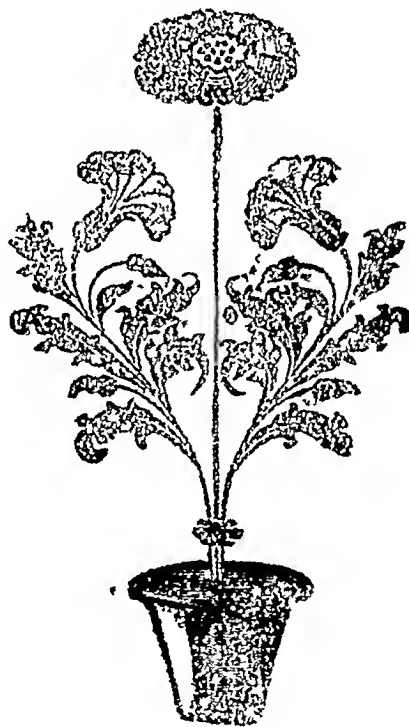
मोल लीं । उनमें नाना प्रकारका माल भर कर यात्राकी तैयारी की ।

धवल सेठकी पाँच सौ नौकाओंमें छोटी-बड़ी सभी तरहकी नौकायें थीं । कई नौकायें तो इतनी बड़ी थीं कि उन्हें जहाजके नामसे सम्बोधित किया जा सकता था । इन नौकाओंको माल भरनेके बाद, प्रस्थान करनेके पहले राजाकी आज्ञासे बन्दरगाहपर लाना पड़ा । इनपर हजारों आदमी काम करते थे । प्रस्थानका समय ज्यों-ज्यों समीप आता जाता था, त्यों-त्यों लोगोंको बड़ाही आनन्द हो रहा था । सभी नौकायें आज ध्वजा-पताकाओंसे सजाई गयीं थीं । अनेक नौकायें सात-सात मंजिल उंची थीं । इन नौकाओं पर बड़ो बड़ी तोपें चढ़ा दी गयीं थीं, ता कि किसी शत्रु या समुद्री डाकुओंसे समय पर सामना किया जा सके । इस बेड़ेमें सब मिला कर करीब दस हजार सैनिक थे । जिन्हें, नौकाओंकी रक्षाके निमित्त नियुक्त किये गये थे । यह सैनिक

सभी प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित थे। धवल सेठके बेड़ेका यह प्रबन्ध देखकर और भी अनेक व्यापारी भाड़ा दे देकर उसकी नौकाओं पर अपने सामान सहित आ बैठे। सब तरहकी तैयारियाँ पूरी हो जाने पर यह दल चलनेको तैयार हुआ।

प्रस्थानको निश्चित समय आ पहुँचने पर सबसे बड़ी नौका परसे एक तोप छोड़ी गयी। छोटी-बड़ी अन्यान्य नौकाओंने भी इसका अनुकरण किया। तोपें छूटतेही नाविकोंने लंगर उठाना आरम्भ किया। परन्तु यह क्या ? लंगरों का उठाना तो दूर रहा, उन्हें कोई टस-से-सस भी न कर सका। सभी नौकाओंको मानों किसीने पकड़ रक्खा था। तुरन्तही यह समाचार धवल सेठको पहुँचाया गया। इसका कारण उसकी समझमें न आया, इसलिये वह तुरन्तही नैमित्तिकके पास पहुँचा। उसने बतलाया कि—“समुद्रके अधिष्ठायक देवने आपकी नौकाओंको

रोक रक्खा है। जब तक किसी सर्वगुण-सम्पन्न-
 अर्थात् बत्तिस लक्षणोंसे युक्त पुरुषकी बलि न
 बढ़ायी जायगी, तब तक नौकाओंका चलना
 असम्भव है ।



छठा परिच्छेद ।

समुद्र-यात्रा ।



वल सेठको जब यह मालूम हुआ कि एक सर्वगुण-सम्पन्न पुरुषकी बलि चढ़ाये बिना नौकायें आगे न बढ़ सकेंगी, तब उसे ऐसा पुरुष प्राप्त करने की चिन्ता लगी । राज-नियमके अनुसार यह कार्य बिना राजाकी आज्ञाके न हो सकता था, इसलिये कुछ भेटें लेकर धवल सेठ राजाकी सेवामें उपस्थित हुआ । राजाने जब उससे आगमनका कारण पूछा, तब उसने सारी बातें कह सुनायी । राजाने कहा—“मैं इसके लिये सहर्ष आज्ञा दे सकता हूं, किन्तु शर्त यह है कि जो मनुष्य पकड़ा जाय, वह परदेशी हो और इस नगरमें उसका कोई भी रिश्तेदार या कुटुम्बी न रहता हो ।”

राजाकी आज्ञा मिलतेही धवल सेठने चारों ओर अपने आदमी छोड़ दिये । उन्हें आज्ञा दी, कि जहाँ ऐसा पुरुष मिले वहींसे उसे पकड़ लाया जाय । धवल सेठके आदमी कई दिन तक समूचे नगरमें खोज करते रहे, परन्तु कोई भी सर्वगुण-सम्पन्न परदेशी पुरुष न मिला । अन्तमें बड़ी कठिनाईके बाद श्रीपाल पर उन लोगोंकी निगाह पड़ी । उन्होंने तुरन्तही धवल सेठको यह समाचार दिया । धवल सेठने आज्ञा दी कि, शाय ही उस पुरुषको गिरफ्तार कर हाजिर करो, ताकी हम लोग अपना काम पूरा कर यहाँसे प्रस्थान करें । परदेशी होनेसे यह लाभ होगा कि यहाँ किसी प्रकारका बावैला न मचेगा, न कोई उसकी खोज-खबर ही लेगा ।

धवल सेठकी यह आज्ञा मिलते ही उसके दस हजार सुभट श्रीपालको पकड़नेके लिये दौड़ पड़े । उन्होंने श्रीपालके निकट पहुँचते ही बड़ी उच्छता-पूर्वक कहा—“चलो, तुम्हारी

जिन्दगीके दिन पूरे हो गये । धन-कुबेर धवल सेठ तुमपर रूठ हो गया है । हम लोग तुम्हें उसके पास पकड़ ले चले गे । वहाँ तुम्हारा बलिदान होगा । हमारी इन बातोंमें लेशमात्र भी झूठ नहीं है ।”

धवल सेठके आदमियोंकी यह बातें सुन श्रीपालको स्वाभाविक ही कुछ क्रोध आ गया । उन्होंने कहा—“मूर्खों ! कहीं सिंहका भी बलिदान होते सुना है ? तुम्हारा मालिक धवल, बकरेके समान कोई पशु होगा । अतः बलिदानके लिये वही उपयुक्त हो सकेगा ।”

जब धवल सेठने यह बात सुनी और उसे मालूम हुआ कि श्रीपालको गिरफ्तार करना सजह काम नहीं है, तब उसने राजासे सब समाचार निवेदन कर उसकी सहायता चाही । राजाने सहर्ष सहायता देना स्वीकार किया । धवल सेठकी सेनाके साथ-साथ राजाकी सेना भी श्रीपालको पकड़नेके लिये अग्रसर हुई ।

श्रीपालको पकड़ना सहज कार्य न था । श्रीपालने तुरन्त ही दोनों दलोंसे युद्ध करना आरम्भ कर दिया । इस घटनासे बजारमें चारों ओर हा-हाकार मच गया । एक ओर हजारों सैनिक थे और दूसरी ओर अकेले श्रीपाल थे । श्रीपालपर शस्त्रास्त्रों द्वारा अनेक वार किये जाते थे, 'किन्तु शस्त्र-घात-निवारिणी' औषधिके प्रतापसे उनका एक बाल भी बाँका न हों सका । इसके विपरीत, श्रीपालका एक वार भी खाली न जाता था । वें जिधर ही झपट पड़ते, उधर ही लाशें बिछ जातीं और मैदान साफ नजर आना । कुछ समय तक यही अवस्था रहने पर धवल और राजाके सैन्यमें भगदड़ होना आरम्भ हो गयी । जिसे जहाँ रास्ता मिला, वह वहीं भाग चला । अनेक सैनिकोंने दीनता प्रदर्शित की एवं अनेक सैनिकोंने शरण स्वीकार कर प्राण रक्षा की ।

धवल सेठने जब देखा कि मामला बिगड़



हम लोगोने अज्ञानतावश आपको कष्ट देकर जो अपराध किया है, वह क्षमा कीजिये ।

[पृष्ठ ७६]

रहा है । बलसे काम निकलना असम्भव है, तब उसने युक्तिसे काम निकालना स्थिर किया । वह तुरन्त ही श्रीपालके पास जाकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा । कहने लगा—“आप मनुष्य नहीं, कोई देवता मालूम होते हैं । हमलोगोंने अज्ञानतावश आपको कष्ट देकर जो अपराध किया है, वह क्षमा कीजिये । हमलोग इस समय बहुत बड़े संकटमें पड़ गये हैं । हमारी नौकायें स्तम्भित हो गयी हैं । यदि आप किसी तरह उन्हें चला देनेकी कृपा करेंगे तो हमलोग आपके चिर ऋणी रहेंगे ।”

श्रीपालने कहा—“मैं आपका यह कार्य कर सकता हूँ ; किन्तु इसके लिये आप क्या खर्च करनेको तैयार हैं ।”

धवल सेठने कहा—“मैं एक लाख स्वर्ण-मुद्रायें आपके चरणों पर रख सकता हूँ ; किन्तु जैसे हो वैसे इस विपत्तिसे छुटकारा मिलना चाहिये ।”

लक्ष्मी उपार्जन करना ही श्रीपालका प्रधान उद्देश्य था । इसीलिये वे परदेश आये थे । उन्होंने यह अवसर हाथसे खोना उचित न समझा । धवल सेठकी बात स्वीकार कर वे उसी समय समुद्र-तटपर जा पहुँचे । परिस्थिति का निरीक्षण करनेके बाद वे सबसे बड़ी नौकापर गये । वहाँ खड़े हो सिद्धचक्रका ध्यान कर सिंह-नाद किया । सिंहनाद सुनते ही जिस दुष्ट देवीने नौकायें रोक रखी थी, वह भाग खड़ी हुई और नौकायें चलने लगीं । यह देखकर धवल सेठके आनन्दका पारावार न रहा ।

अब धवल सेठ अपने मनमें सोचने लगा कि—“यह नर-रत्न किसी तरह साथ ही रहे तो अपनी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो सकती है । यह सोच कर उसने एक लक्ष स्वर्ण मुद्रायें कुमारके चरणोंमें भेंट कर कहा—“हे महापुरुष ! मैं चाहता हूँ कि इस यात्रामें आप भी मेरे साथ रहें । मेरे पास दस हजार सैनिक हैं । प्रत्येकको हरसाल

एक हजार रुपये देता हूँ, किन्तु यदि आप मेरे साथ रहना स्वीकार करें, तो मैं आपको जितना कहें, उतना धन दे सकता हूँ ।”

श्रीपालने कहा—“मैं सहर्ष आपके साथ चल सकता हूँ, किन्तु आप अपने दस हजार सैनिकोंको जितना वेतन देते हैं, उतना अकेले मुझे देना होगा । इसके बदलेमें मैं वचन देता हूँ कि दस हजार सैनिक जो कार्य करते हैं, वह मैं अकेला करूँगा ।”

धवल सेठ पूरा हिसाबी वणिक था । उसने हिसाब लगा कर देखा तो एक करोड़ रुपये हुए । वह कहने लगा—“इतनी बड़ी रकम अकेले आपको देना मेरे लिये असम्भव है । इसके लिये मुझे साहस ही नहीं होता ।”

धवल सेठको यह मनोवृत्ति देखकर श्रीपाल हँस पड़े । उन्होंने कहा—“मैंने यह बात आपकी हिम्मत देखनेके लिये ही कही थी । यदि आप इतनी रकम देना स्वीकार करें, तब भी

मैं एक सेवकको भाँति आपके साथ आनेको तैयार नहीं हूँ; किन्तु मैं विदेशोंकी यात्रा करना चाहता हूँ। इसलिये आपके साथ यों ही चलने को तैयार हूँ। यदि आप उचित भाड़ा लेकर अपनी किसी नौकापर मुझे स्थान देनेकी कृपा करें, तो मैं सहर्ष आपके साथ चल सकता हूँ।

धवल सेठने कहा—“मुझे इसमें किसी तरहकी आपत्ति नहीं। दूसरेसे तो मैं बहुत भाड़ा लेता; किन्तु आपसे प्रतिमास केवल सौ ही रुपये लूँगा।”

श्रीपालने यह भाड़ा स्वीकार कर एक नौकामें उपयुक्त स्थान पसन्द कर लिया। यथा समय सब नौकायें चल पड़ीं। कुछ दिनोंके बाद धन्वरकुल नामक एक बन्दर मिला। इस समय प्रधान नाविकने कहा—“यहाँसे अन्न और लकड़ियाँ आदि आवश्यक सामग्रियाँ संग्रह कर हमें शीघ्रही आगे बढ़ना चाहिये। क्योंकि इस समय वायु बहुत ही अनुकूल है। जिसे जिस

वस्तुकी आवश्यकता हो, वह शहरमें जाकर शीघ्रही ले आये ।”

प्रधान नाविककी यह बात सुन सब नौ-
कार्यें वहाँ रोक दी गयीं । लोग आवश्यक
वस्तुओंका संग्रह करनेके लिये शहरमें गये ।
धवल सेठ भी नौकासे उतर कर, तटपर बड़े
ठाठसे गद्दी तकिया लगाकर आ बैठा । चारों
ओर उसके कर्मचारी खड़े हो गये । और
राजसी ढंगसे धवल सेठकी आज्ञाओंका पालन
करने लगे ।

बम्बर कुलके राज-कर्मचारियोंको यह मालूम
हुआ कि कोई व्यापारी बन्दरपर आया है । इस
लिये वे लोग धवल सेठके पास पहुँचे । उन्होंने
यथा नियम दाण किंवा करकी याचना की ।
धवल सेठको अपने सैनिकों पर बड़ा अभिमान
था । उसने सोचा कि युद्ध भले ही करना पड़े;
किन्तु कर न चुकाया जाय । निदान, कर देनेसे
इन्कार करने पर राजाके आदमियोंसे झगड़ा

हो गया । देखते-ही-देखते युद्धका सामान उपस्थित हो गया । उसी समय राजाके आदमियोंने यह समाचार राजाको पहुँचाया । राजाके पास एक सुदृढ़ सैन्य था । वह उसे साथ लेकर तुरन्त ही समुद्र-तट पर आ पहुँचा । चारों ओरसे धवल सेठको घेर लिया । धवल सेठके सैनिक उसके सामने ठहर न सके । ज्योंही वे इधर उधर भागने लगे, त्योंही राजाके सैनिकोंने धवल सेठको गिरफ्तार कर लिया । राजाने आज्ञा दी—“कि करके बदलेमें सब नौकायें जप्त कर ली जाँय और इस बनियेको एक पेड़में हाथ पैर बाँध कर उलटा टाँग दिया जाय ।” तुरन्त ही यह आज्ञा कार्य-रूपमें परिणत की गयी । पहलेका समुचित प्रबन्ध कर राजा अपने निवास-स्थानको लौट गया ।

श्रीपाल अब तक अपनी नौकामें बैठे हुए सारा तमाशा देख रहे थे । जब उन्होंने धवलको यह दुर्गति देखी, तब वे नौकासे उतर कर उसके



“अब इस समय मुझे विशेष लज्जित न कीजिये ।
यदि किसी तरह मुझे मुक्त करा सकें तो चेष्टा कीजिये ।
बड़ी कृपा होगी । मैं आपका यह उपकार कभी न भूलूँ गा ।”

(पृष्ठ ८५)

पास आये । उन्होंने पूछा—“यह क्या ? आपके सब धीर-वीर सैनिक कहाँ चले गये ? यदि आपने मुझे करोड़ रुपये दिये होते तो आज आपकी यह दुर्गति कदापि न होती ।”

श्रीपालकी यह बातें सुन धवल सेठ लज्जित हो गया । उसने कहा—“अब इस समय मुझे विशेष लज्जित न कीजिये । यदि किसी तरह मुझे मुक्त करा सकें तो चेष्टा कीजिये । बड़ी कृपा होगी । मैं आपका यह उपकार कभी न भूलूँगा ।”

श्रीपालने कहा—“मैं आपको छुड़ा सकता हूँ । आपकी सब नौकायें भी वापस दिला सकता हूँ । किन्तु पहले यह बतलाइये, कि मुझे इसका बदला क्या मिलेगा ?”

धवल सेठने कहा—“यदि आप मुझे छुड़ा दें और मेरी समस्त सम्पत्ति वापस दिला दें तो आपको अपनी नौकायें और उनपर लदा हुआ माल आधा बाँट दूँगा ।”

श्रीपाल कुमारने यह स्वीकार कर लिया । अब वे शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित हो, शहरकी ओर रवाना हुए । दैव-योगसे राजा महाकाल और उसके सैन्यसे रास्तेमें ही भेंट हो गयी । श्रीपाल ने राजाके निकट पहुँच कर कहा—“राजन् ! धवल सेठकी सम्पत्ति इतनी आसानीसे हाथ नहीं की जा सकती । आइये, पहले मुझसे युद्ध कीजिये फिर । देखिये कि कुछ मिलता है या उलंटा देना पड़ता है ।”

श्रीपालकी यह ललकार सुनते ही महाकाल खड़ा हो गया । किन्तु उसने जब देखा कि श्रीपाल अकेला ही है, तब वह कहने लगा—“हे युवक ! तू अभी नवयुवक है । शरीर भी तेरा सुन्दर है ।” इस तरह प्राण देनेको क्यों तैयार हो रहा है ? जा, अपने घर लौट जा ।”

श्रीपालने कहा—“मैं युद्ध करने आया हूँ । युद्धमें बातोंका व्यापार कैसा ? इस समय तो शस्त्रका ही व्यापार होना चाहिये ।”

श्रीपालकी यह बात सुन महाकालको क्रोध आ गया । उसने अपने सैन्यको श्रीपाल पर आक्रमण करनेकी आज्ञा दे दी । आज्ञा मिलते ही सैनिकोंने चारो ओरसे कुमार पर शस्त्रास्त्रकी वर्षा आरम्भ कर दी । इससे कुमारकी तो कोई हानि न हुई, परन्तु कुमारके प्रत्येक बाणसे दो चार सैनिक अवश्य घायल होते थे । कुछ समय तक योंही युद्ध चलता रहा । अन्तमें श्रीपालकी मारसे महाकालकी सेनाके छक्के छूट गये । सैनिक जिधर ही रास्ता मिला, उधर ही भागने लगे । अवसर देख, श्रीपालने महाकालको भी गिरफ्तार कर लिया । इसके बाद वे समुद्र-तटपर आये । वहाँके रत्नकोंको भगाकर धवल सेंठको बन्धन-मुक्त किया । धवल सेठने जब देखा कि राजा महाकाल बन्दीके रूपमें सम्मुख उपस्थित है, तब वह उसे खड्ग ले मारने दौड़ा । किन्तु कुमारने इसे अनुचित बता कर रोक दिया ।

यह सब करनेके बाद श्रीपालने, महाकाल-

को भी बन्धन-मुक्त कर, अपनी ओरसे बहुतसी चीजें भेंट दे, बिदा किया । धवल सेठके हजारों सैनिक जो युद्धके समय भाग गये थे, वे फिर आकर इंकट्ठे हुए । परन्तु धवल सेठने सबोंको निकाल दिया । श्रीपालने सोचा कि, इन लोगोंसे किसी समय बहुत काम निकल सकता है, इस लिये उन्होंने उन सबको अपने पास रख लिया । और कहा कि—“तुम लोग आजसे धवल सेठके बदले मेरे सेवक हुए । आजसे तुम्हें मेरी २५० नौकाओंकी रक्षा करनी होगी । और जो मैं कहूँगा, वही करना होगा ।”

उधर महाकाल राजा जब युद्धमें पराजित हुआ तो उसके समस्त स्वजन-कुटुम्बी भाग खड़े हुए थे । श्रीपालने उन सबको अभय-दान दे, अपने पास बुलाया । यथोचित सत्कार कर उन्हें यथा पूर्व रहनेकी आज्ञा दी । श्रीपालका यह व्यवहार देख, महाकाल राजा बहुत ही चकित और प्रसन्न हुआ । उसने श्रीपालसे प्रार्थना की

कि—“एक बार आप मेरे नगर और राज-प्रासादको अपने आगमनसे पावन करनेकी कृपा करें। क्योंकि जिस तरह मरु-भूमिके लोगोंको आम्र-वृक्षके दर्शन दुर्लभ होते हैं, उसी तरह हमलोगोंके लिये भी आप जैसे प्रतापी पुरुषोंके पवित्र दर्शन दुर्लभ हैं।”

श्रीपालने महाकालकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। किन्तु इससे धवल सेठको बहुत ही चिन्ता होने लगी। वह सोचने लगा—“ऐसा न हो कि कुमार यहीं रह जायँ, तो मैं कहींका न रहूँ।” क्योंकि श्रीपालके बिना उसका आगे बढ़ना असम्भव था। उसने श्रीपालसे कहा—“आप जैसे पुराणात्मासे सभी लोग प्रेम कर सकते हैं; किन्तु हमलोगोंको रत्नद्वीप जाना है। यदि हमलोग इसी तरह जहाँ-कहीं रहने लगेंगे, तो वहाँ तक पहुंच ही न सकेंगे।

श्रीपालने कहा—“आपका कहना ठीक है, किन्तु किसीकी प्रार्थना कैसे अस्वीकार की जाय ?”

उधर राजा महाकालने समूचे नगरको ध्वजा-पताकाओं से खूब सजाया था । स्थान-स्थान पर नृत्य और गायनका आयोजन किया था । यह सब श्रीपालके ही निमित्त हुआ था । यथा समय श्रीपालकी सवारी निकली । बड़ी धूमके साथ सारे नगरमें घूमती हुई महाकालके राज प्रासादमें पहुंची ।

राजा महाकालने श्रीपालके आदर-सत्कार और आतिथ्यमें किसी प्रकारकी कोर-कसर न न रखी । इधर उधरकी बहुत सी बातें होनेके बाद, राजाने अबसर देख, श्रीपालसे अपनी राज-कन्याके पाणि-ग्रहणका प्रस्ताव किया । श्रीपालने कहा,—“मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं ; किन्तु अज्ञात-कुल व्यक्तिको अपना सम्बन्धी बनाने के पूर्व आपको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये ।”

राजाने कहा—“मैंने इसका विचार अच्छी तरह कर लिया है । हंस छिपा नहीं रह सकता ।

आपका शील-स्वभाव और आपके गुण ही आपके कुलका परिचय दे रहे हैं । वैदुर्य-रत्नकी खानिसे ही हीरा उत्पन्न हो सकता है ।”

श्रीपालने राजा महाकालका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । महाकालने तुरन्त अपनी मदनसेना नामक कन्याका श्रीपालके साथ विवाह कर दिया । इस समय देहजमें राजा श्रीपालको अनेकानेक वस्त्राभूषण, नव प्रकारके उत्तम नाटक और अनेक दास-दासियाँ अर्पण कीं ।

अनन्तर श्रीपाल बहुत दिनोंतक अपनी इस नयी ससुरालमें मौज करते रहे । अन्तमें उन्होंने एक दिन राजासे, विदा माँगी । यह सुनकर राजा को बहुत ही दुःख हुआ । किन्तु लाचार, अतिथियोंसे किसीका घर आबाद नहीं होता । फिर पुत्री तो पराया धन ठहरी । यह सोच कर उन्होंने श्रीपालको विदा करनेकी तैयारी की ।

सातवां परिच्छेद ।

रत्नद्वीपकी ओर प्रस्थान ।



राजा महाकालने श्रीपालके लिये एक बहुत बड़ी नौका तैयार करायी । उस नौकामें उसने अपरिमित धन-राशि और रत्नादिक रखवा दिये । अपनी पुत्रीको और भी नानाप्रकारकी चीजों भेंट दीं । चलते समय उसने उसे बहुतसा हितोपदेश दिया । पश्चात् मंगल-बाजोंके साथ सब लोग राज-कन्या और श्रीपालको समुद्र-तट-तक पहुँचाने गये । प्रेमके कारण वहाँ सबकी आँखोंमें आँसू आ गये । श्रीपाल और राज-कन्याने सबसे बिदा ग्रहण कर नौका पर स्थान ग्रहण किया । आँसू बहाते हुए लोगोंने उन्हें बिदा किया । नाविकोंने लंगर उठाये । नौकायें वायु-वेगसे रत्न द्वीपकी ओर चल पड़ीं ।

श्रीपालकी नौकामें आमोद-प्रमोदके साध-
नोंकी कमी न थी । पूरा राजसी ठांठ था ।
नौका पर नाटक अभिनीत हो रहे थे । और
श्रीपाल मदनसेनाके साथ एकं झरोखेसे अभिनय
देखते हुए चले जा रहे थे । धवलसेठको यह सब
देख देख कर, नाना प्रकारके विचार उत्पन्न
होते थे । वह अपने मनमें सोचता था कि यात्रा
तो श्रीपालको ही सफल हुई । मैं तो व्यर्थही
बेगार कर रहा हूँ । बम्बर कुलमें हमलोग
सामान लेने उतरे, तो वहाँ मुझ पर आफत
आयी । किन्तु श्रीपाल एक राज-कन्या और
मेरी आधी सम्पत्तिका अधिकारी हो गया । मेरा
उसके पास कुछ भाड़ा पावना है । क्या करूं ?
माँगू या न माँगू ? माँगने पर भी वह देगा या
नहीं ?”

श्रीपालकुमारको धवल सेठके इन संकीर्ण
विचारोंका जब पता चला, तब उन्होंने धवल
सेठको बुला कर, उसका जितना भाड़ा निकलता

था, उससे दस गुनी रकम चुका दी । धवल सेठ को यह देख कर बड़ाही आश्चर्य हुआ ।

कुछ दिनोंके बाद सब लोग रत्नद्वीप जा पहुँचे । लंगर डालकर नौकाएँ खड़ी कर दी गयीं । सब लोग नौकाओंसे उतर पड़े । कर-जकात चुकाकर सब माल गुदामोंमें रखवा दिया गया । श्रीपालने समुद्रके तट पर ही अपना सुनहला तम्बू खड़ा करवाया । उस तम्बूमें वे एक राजा की तरह रहने लगे । नित्य ही नाटक आदि आमोद-प्रमोद होते रहे । इस तरह कुमारके दिन बड़े ही आनन्दसे व्यतीत होने लगे ।

एक दिन धवल सेठने श्रीपालके पास आकर कहा—“इस समय हम लोगोंकी चीजोंके दाम बहुत अच्छे मिल रहे हैं । आप अपना माल बेचते क्यों नहीं ?” श्रीपालने कहा—“यह काम आपही कीजिये ।” धवलसेठको यह सुनकर बहुत ही आनन्द हुआ । क्योंकि यह उसीके लाभकी बात थी । श्रीपालके आदेशानुसार वह अपने

मालके साथ साथ उनके मालकी भी निकासी करने लगा ।

एक दिन श्रीपाल कुमार आनन्द-पूर्वक नाटक देख रहे थे । उसी समय कई अनुचरों के साथ एक सवार वहाँ आ पहुँचा । श्रीपालने उन लोगोंका सत्कार कर, उन्हें अपने पास बैठाया । नाटक देखकर वे लोग बहुत ही प्रसन्न हुए । श्रीपाल कुमारने नाटक समाप्त होने पर उनसे पूछा—“आप लोग कहाँसे और किस लिये आये हैं ?”

सवारने अपना परिचय देते हुए कहा—“इस रत्नद्वीपमें रत्नसानु नामक एक बलयाकार पर्वत है । उस पर्वत पर रत्नसञ्चया नामक नगरी है । वहाँ कर्नककेतु नामक विद्याधर राज करता है । उसकी रानीका नाम रत्नमाला है । उसने चार पुत्र और एक कन्याको जन्म दिया है । कन्याका नाम मदनमंजुषा है । वह बहुत ही रूपवती है । पर्वतके शिखरपर राजाके पिताने

एक जिन-मन्दिर निर्मित कराया है । उसमें स्वर्णमयी श्री ऋषभदेव भगवानकी मूर्ति स्थापित है । राजा और राज-कुमारी उनकी बहुत ही भक्ति करते हैं ।

एक दिन राज-कुमारीने प्रभुकी बहुत ही मनोहर आँगी रची । सुवर्णके पत्र लगाकर बीच बीचमें रत्न सजा दिये । इससे आँगीकी शोभा सौगुनी बढ़ गयी । इसी समय राजा कनककेतु मन्दिरमें जा पहुँचे । राजकुमारी द्वारा रचित आँगी देखकर उन्हें सीमातीत आनन्द हुआ । वे अपने मनमें कहने लगे—“धन्य है मेरी पुत्री को । यह चौंसठ कलाओंकी निधान है । इसके लिये अब ऐसाही योग्य वर खोजना चाहिये । यदि अनुरूप वर न मिला तो बहुत ही दुःखकी बात होगी । मणि और काञ्चनका ही योग होना चाहिये । काच और काञ्चनका नहीं ।

जिस समय राजाके मनमें यह विचार आये, उसी समय राज-कुमारी आँगीका कार्य पूर्ण

कर बाहर निकल रही थी । किन्तु वह ज्यों ही बाहर निकली, त्योंही अकस्मात् गर्भ-द्वारके किवाड़े बन्द हो गये । उन्हें खोलनेके लिये उसने बड़ी चेष्टा की । लेकिन खुलनेकी कौन कहे, वे टस-से-मस भी न हुए । यह देखकर राजकुमारी अपने मनमें सोचने लगी कि—“प्रमादके कारण मुझसे अवश्य कोई बड़ी भारी आशातना हो गयी है । उसीसे मुझे यह दण्ड मिला है ।” वह कहने लगी—“हे प्रभो ! यदि मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा कीजिये । मैं अभी नादान हूँ । बच्चे तो अपराध किया ही करते हैं, परन्तु माता-पिता उनकी ओर ध्यान नहीं देते । हे भगवन् ! आपने मुझपर इतनी अकृपा क्यों की ?”

राज-कुमारीको इस प्रकार दुःखित होते देख, राजाने कहा—“पुत्री ! इसमें तेरा कोई अपराध नहीं है । सारा अपराध मेरा ही है । मैंने तेरा कौशल्य देख कर मन-ही-मन तेरे लिये पतिकी चिन्ता की । इसी आशातनाके होनेसे

द्वार बन्द हो गये । भगवान् वीतराग हैं—राग-दोषसे रहित हैं । अतएव वे तो क्रोध कर ही नहीं सकते ; किन्तु किसी अधिष्टायक देवने मुझे यह दण्ड दिया है । खैर, कुछ भी हो, अब मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक यह द्वार न खुलेंगे, तब तक यहाँसे न हटूँगा ।”

इस प्रकार प्रतिज्ञा कर मन्दिरमें बैठे-बैठे तीन दिन बीत गये । इन तीन दिनोंमें राजा और उनके परिवार वालोंने सुंहमें एक दाना भी न डाला । तीसरे दिन पिछली रातमें आकाश-वाणी हुई कि—“आप लोग चिन्ता न करें । जिस आदमीके देखनेसे यह द्वार खुलेंगे, वही रत्न मञ्जूषाका पति होगा । मैं भगवान् ऋषभ-देवकी किंकरी चक्रेश्वरी देवी हूँ । एक मासमें वरको लाकर यहाँ उपस्थित करती हूँ ।” यह आकाश-वाणी सुनकर राजा और उनके परिजनोंको सीमातीत आनन्द हुआ । अनन्तर सब लोगोंने उस समय शान्ति-पूर्वक पारणा किया ।”

हे कुमार ! इस घटनाको घटित हुए २६ दिन हो चुके हैं । राज-परिवार बहुत ही उत्कण्ठा-पूर्वक उपरोक्त पुरुषके आगमनकी राह देख रहा है । मैं जिनदेव सेठका पुत्र जिनदासा हूँ । आप लोगोंका आगमन-समाचार सुन, राजा के आदेशानुसार मैं खबर लेने आया हूँ । आपको देखतेही मेरी यह धारणा दृढ़ हो गयी है कि चक्रेश्वरी देवी आपहीको यहाँ ले आयी हैं । मेरी यह भी धारणा है कि उस मन्दिरके द्वार पर आपकी दृष्टि पड़ते ही वे खुल जायेंगे । कृपा कर आप मेरे साथ चलिये और जिनेश्वरके दर्शन कर अपना जन्म सफल कीजिये ।”

जिनदासकी यह बातें सुन श्रीपालने, उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । इससे जिनदासको सीमातीत आनन्द हुआ । श्रीपाल अपने चुने हुए अनुचरोंके साथ रत्नसानु पर्वतकी ओर चलनेकी तैयारी करने लगे ।



आठवां परिच्छेद ।

मन्दिरके द्वार खुल गये !



श्रीपालने रत्नसानुकी ओर प्रस्थान करते समय धवल सेठसे भी अपने साथ चलनेका अनुरोध किया। उसने कहा—“आप जाइये, आपको न कोई काम है, न कोई चिन्ता। आप जिस कार्यको सोचते हैं, वह अनायास ही सिद्ध हो जाता है। हमें तो खानेकी भी फुरसत नहीं मिलती। बड़ी कठिनाईसे दिनमें एक बार खानेका अवकाश मिलता है। ऐसी अवस्थामें आपके साथ कैसे चल सकता हूँ ?”

श्रीपाल, धवल सेठके कुटिल स्वभावसे, भली भाँति परिचित थे। इसलिये उन्होंने उससे अधिक अनुरोध करना उचित न समझा।

अपने कुछ आदमियोंको साथ ले, तुरन्त जिन-
दासके साथ चल दिये । कुछ ही समयमें
सब लोग ऋषभदेव भगवान्‌के मन्दिरके पास
जा पहुँचे । वहाँ पहलेसेही लोगोंकी बड़ी भीड़
थी । जिनदासने सोचा यदि यह सब लोग
एक साथही मन्दिरमें प्रवेश करेंगे तो पता न
लगेगा, कि किसकी दृष्टि पड़नेसे मन्दिरके
किनाड़ा खुले । इसलिये उसने एक, एक
मनुष्यको मन्दिरके अन्तर्द्वार तक जानेकी
आज्ञा दी । इस व्यवस्थाके अनुसार वहाँ
जितने मनुष्य उपस्थित थे, सभी मन्दिरके उस
भीतरी दरवाजे तक हो-होकर लौट आये ।
किन्तु न तो मन्दिरके किनाड़ा ही खुले, न किसी
को देव-प्रतिमाके ही दर्शन हुए !

अन्तमें श्रीपालकी बारी आयी । श्रीपालने
स्नान कर पवित्र वस्त्र धारण किये । पूजनकी
सामग्री ले, मुखकोश बाँध कर सविनय मन्दिर
में प्रवेश किया । अन्तर्द्वारके निकट पहुँचते

ही मन्दिरके किवाड़ खुल गये । इस घटनासे चारों ओर आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा । आकाशसे देवताओंने पुष्प-वृष्टि की । उपस्थित जन-समुदाय जय-जयकार करने लगा । तुरन्त ही यह शुभ-समाचार राजाको पहुँचाया गया । राजाने जब यह सुना कि रत्नमञ्जूषाका पति आ पहुँचा है और उसकी दृष्टि पड़ते ही मन्दिरके किवाड़ खुल गये, तब उसे बहुत ही आनन्द हुआ । वह उसी समय सपरिवार जिन-मन्दिर की ओर रवाना हुआ ।

जिस समय राजा कनककेतु जिन-मन्दिरमें पहुँचा, उस समय श्रीपाल जिन-पूजा कर रहे थे । पहले द्रव्य-पूजा कर फिर भाव-पूजा की । अनन्तर चैत्यवन्दन एवं स्तुति कर जब वह रंग-मण्डपमें आये, तब राजाने परिजनों सहित उन्हें प्रणाम कर उनका स्वागत किया । इसके बाद मन्दिरके किवाड़ खोलनेके लिये कृतज्ञता प्रकट कर राजाने श्रीपालसे उनके कुल और वंश

आदिका परिचय पूछा । परन्तु कुमार अपने मुँहसे क्यों कोई बात कहने लगे ? वे मौनही रहे । उत्तम पुरुष कदापि अपने मुँहसे आत्म-प्रशंसा नहीं करते ।

इसी समय एक आश्चर्य जनक घटना घटित हुई । अचानक आकाश किसी दिव्य प्रकाशसे आलोकित हो उठा । सब लोग चकित होकर आकाशकी ओर देखने लगे । इसी समय एक विद्या-चारण मुनि भूमिपर उतरे । उन्होंने प्रथम मन्दिरमें जाकर प्रभुके दर्शन कर स्तुति की । तदनन्तर रंग-मण्डपमें, देव-रचित सिंहासन पर बैठकर, लोगोंको उपदेश देना आरम्भ किया । उन्होंने कहा—“हे भव्यजीवो ! तुम लोग सिद्ध-चक्रकी उपासना करो, जिससे इस और उस जन्ममें अनेक प्रकारकी सुख-सम्पत्ति प्राप्त हो । दुःख-दुर्भाग्य, व्याधि, उपाधि, संकट और उपद्रवोंका नाश हो । और तुम लोग अनन्त-सुखके भोक्ता हो सको । नवपदके सेवनसे श्रीपालने

जिस प्रकार सुख-सम्पत्ति प्राप्त की है, उसी प्रकार तुम लोग भी प्राप्त कर सकते हो ।”

मुनिराजकी यह बातें सुन लोगोंने श्रीपाल का परिचय पूछा । मुनिराजने विस्तार-पूर्वक श्रीपालका चरित्र कह सुनाया । अन्तमें उन्होंने कहा—“यही श्रीपाल इस समय यहाँ आये हुए हैं । इन्हींकी दृष्टि पड़नेसे मन्दिरके यह द्वार खुले हैं ।”

इस प्रकार लोगोंको श्रीपालका परिचय दे, मुनिराज आकाशकी ओर उड़ गये । लोग बड़ी देर तक उनकी ओर देखते और नमस्कार करते, रहे । कुमार श्रीपालका चरित्र सुनकर राजाको बहुत ही आनन्द हुआ । उसने मन्दिरके बाहर निकलते ही अपने परिजन और नगर-निवासियोंके सम्मुख कुमारको तिलक लगाकर उनसे मदनमञ्जूषाके साथ पाणि-ग्रहण करनेकी प्रार्थना की । कुमारने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया । चारों ओर इस समाचारसे आनन्द

व्याप्त हो गया । कुमार अपने निवास-स्थानको लौट आये । दोनों ओर ब्याहंकी तैयारियाँ होने लगीं । शीघ्रही शुभ मुहूर्तमें कुमारने मदन-मञ्जूषाका पाणि-ग्रहण किया । राजाने कुमार को रहनेके लिये एक अच्छा स्थान निकाल दिया । कुमार अपनी दोनों रानियोंके साथ वहीं मौजसे रहने लगे ।

चैत्र मास आनेपर नवपदकी आराधनाके निमित्त कुमारने नव आयम्बिल किये । जिन-मन्दिरमें अट्ठाई महोत्सव किया । चारों ओर अमारीपडह बजवाया और भली भांति सिद्धचक्र की उपासना की ।

एक दिन राजा और श्रीपालकुमार जिन-मन्दिरमें प्रभु-स्तुति कर रहे थे । इसी समय कोतवाल आया । उसने राजासे निवेदन किया —“महाराज ! हम लोग एक बड़े भारी अपराधीको पकड़ लाये हैं । उसने आपकी अवज्ञा कर, जकात देनेसे इन्कार किया । माँगने पर

वह लड़नेको तैयार हुआ । इसलिये हम लोगोंने भी उसे गिरफ्तार कर लिया है । कहिये, उसे क्या दण्ड दिया जाय ?”

राजाने कहा—“कर न देना और चोरी करना एक समान है । अतएव जो सजा चोरको दी जाती है, वही इसे भी देनी चाहिये । इसके लिये प्राण-दण्ड ही उपयुक्त दण्ड है ।

राजाकी यह बात सुन श्रीपालका हृदय काँप उठा । उन्होंने कहा—“राजन् ! हम लोग जिन-मन्दिरमें बैठे हुए हैं । यहाँ बैठकर ऐसी बात कैसे कही जा सकती है ? बिना अपराधीको देखे, और बिना उसकी बात सुने, ऐसा कठोर दण्ड देना ठीक नहीं ।”

श्रीपालकी बातकी राजा उपेक्षा न कर सके । उन्होंने अपराधीको अपने सम्मुख उपस्थित करनेकी आज्ञा दी । उसी समय कोतवाल धवल सेठको उनके सम्मुख ले आया । उसे देखते ही श्रीपाल मुस्कुरा उठे । उन्होंने कहा—“वाह !

आप लोग चोर तो बहुत अच्छा पकड़ लाये । यह तो कोट्याधिपति धनिक हैं । सैकड़ों नौकायें इनके साथ हैं । मैं इन्हे अपने पिताके समान मानता हूँ और इन्हींके साथ मैं यहाँ आया हूँ ।

इतना कह, श्रीपालकुमारने धवल सेठके बन्धन छुड़ा कर उसे राजासे क्षमा-प्रार्थना करने को कहा । उसके क्षमा-याचना करने पर राजाने श्रीपालसे कहा—“ मैं आपकी इच्छाके विपरीत कोई कार्य कैसे कर सकता हूँ । आप जिसकी रक्षा करनेको तैयार होंगे, उसका अपराध तो ईश्वर भी क्षमा कर देंगे । वह अजर-अमर हो जायगा ।

कुछ दिनोंके बाद एक दिन धवल सेठने श्रीपालसे आकर कहा—“हम लोग अपने साथ जितना माल लाये थे, वह सब बेच दिया है और यहाँसे नया माल खरीद कर नौकायें भर दी हैं । अब जिस तरह आप हमें यहाँ लाये थे, उसी तरह कृपा कर स्वदेश पहुँचा दीजिये ।”

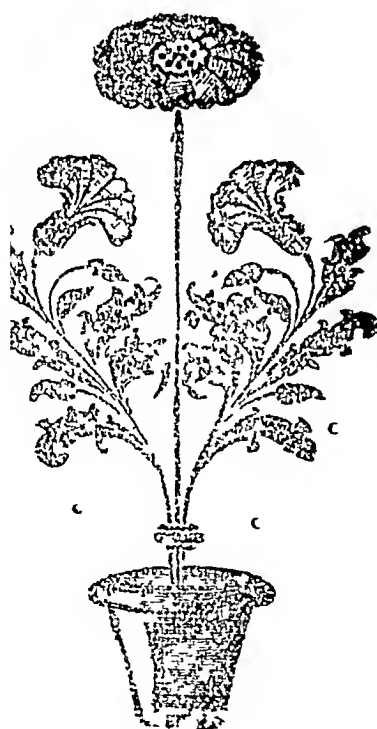
धवल सेठकी यह बात सुन श्रीपालने राजा से सारा हाल निवेदन कर, बिदा माँगी । राजा को इससे बहुत ही दुःख हुआ । किन्तु उसने सोचा, कि मंगनीकी चीज पर मोह रखना व्यर्थ है । परदेशीका प्रेम अन्तमें दुखदायी सिद्ध होता है । यह सोचकर वह उन्हें बिदा करने की तैयारी करने लगा । पश्चात् उसने श्रीपालसे कहा—“कुमार ! हम लोगोंने मदनमञ्जूषाको बड़े प्रेमसे पाल-पोस कर बड़ी की है । दुःख किसे कहते हैं, यह वह जानती ही नहीं । इसलिये उसे अपनी छत्र-छायामें जहाँ तक हो सके सुख पहुँचानेकी चेष्टा करना । अब अपना यह कन्या-धन हम आपके हाथोंमें रखते हैं । यदि आप अन्यान्य स्त्रियोंसे व्याह करें, तब भी किसी प्रकार इसके जीको दुःखित न करें । यही हमारा निवेदन है । यही हमारी प्रार्थना और यही हमारी आन्तरिक इच्छा है ।”

तदनन्तर राजा-रानीने मदनमञ्जूषाको

उपदेश देते हुए कहा—“हे पुत्री ! पतिको ही अपना आराध्य देव समझना । हृदयमें चमावृत्तिको स्थान देना । सास-ससुर, जेठ आदि बड़े-बूढ़ोंका आदर करना । अभिमान छोड़ कर हमारे कुलकी कीर्ति बढ़ाना । पतिके सोने के बाद सोना । उठनेके पहले उठना । सौतों को बहिन समझना । उनकी बात मानना । पतिके समस्त परिवारको खिलानेके बाद खाना । दास-दासी और पशुओंकी यत्न-पूर्वक रक्षा करना । जिन-पूजा एवं गुरु-भक्ति पर प्रेम रखना । पतिव्रताके कर्तव्योंका पालन करना । अधिक क्या कहें, जिस तरह दोनों पक्षका मुख उज्ज्वल हो, वही करना ।”

पश्चात् राजा, अनेक दास-दासियों और वस्त्राभूषणोंके साथ, श्रीपाल और मदनमञ्जूषा को विदा करनेके लिये समुद्र-तटपर उपस्थित हुए । कुमार श्रीपालने अपनी दोनों रानियोंके साथ नौका पर स्थान ग्रहण किया । नौका

चलनेको ही थी कि, सबकी आँखोंमें आँसू भर आये । आँसू टपकाते हुए राजाने श्रीपाल और भद्रनमञ्जूषाको बिदा किया । अनन्त सागरके वक्षस्थल पर क्रीड़ा करती हुई नौकायें वहाँसे चल पड़ीं ।





नकां परिच्छेद ।

धवल सेठकी नीचता ।



कायें द्रुतवेगसे अपना रास्ता तय कर रही थीं । कुमार अपनी सबसे बड़ी नौकामें स्वतन्त्रता-पूर्वक सफर कर रहे

थे । उनकी ऋद्धि-सिद्धि, उनका परिवार, उनके नौकर-चाकर और उनकी शान-शौकत देख कर धवल सेठको मन-ही-मन भीषण परिताप होने लगा । उसके हृदयमें बड़े जोरोंसे ईर्ष्या धधक उठी । वह अपने मनमें कहने लगा—“इसने मेरी पाँच सौ नौकाओंमेंसे आधी नौकायें बँटा लीं । खाली हाथ आया था, और इस समय इतनी बड़ी सम्पत्तिका अधिकारी बन बैठा है ।

देवाङ्गना जैसी दो स्त्रियाँ भी इसे मिल गयीं ।”

चिन्ताकी कोई बात नहीं । अभी घर थोड़े ही पहुँच गया है । मैं भी देखूँगा, कि यह सारी सम्पत्ति लेकर किस प्रकार घर पहुँचता है ? यदि मैं इसे समुद्रमें ढकेल दूँ, तो इसकी यह सारी सम्पत्ति और दोनों स्त्रियाँ अनायास ही मेरे हाथमें आ सकती हैं । किसकी सामर्थ्य है, जो मेरे इस कार्यमें बाधा दे सके ?”

इस प्रकार मनमें पाप-पूण विचार उत्पन्न होनेपर धवल सेठको अधिकाधिक सन्ताप होने लगा । अब तक वह केवल ईर्ष्याग्निसे ही जल रहा था, किन्तु अब कुमारकी रूपवती स्त्रियोंको अपनानेका विचार चित्तमें आनेसे वह कामाग्निसे भी जलने लगा । न उसे दिनमें चैन पड़ती थी, न रातमें नींद आती थी । सदा वह ठंडी आँहें भरा करता था और मनकी बात कार्यरूप में परिणत न कर सकनेके कारण दिन-ब-दिन दुर्बल होता जाता था ।

धवल सेठकी नौकाओंपर जितने मनुष्य थे, उनमें उसके चार मित्र थे । उनके साथ धवल सेठकी बड़ी घनिष्टता थी । वे चारों धवल सेठसे पूरी मित्रता रखते थे । धवल सेठको दिन-प्रति-दिन दुर्बल होते देखकर उन्होंने एक दिन पूछा—“आप इस प्रकार दुर्बल क्यों हो रहे हैं ? क्या आपको कोई रोग हुआ है या कोई चिन्ता लगी है ? जो हाल हो, हमसे कहिये । हम उसका उपचार करें ।”

धवल सेठने अब कोई बात छिपाना उचित न समझा । चारों मित्रसे उसका दिल भी खूब मिला हुआ था । अतएव उसने लज्जा छोड़ कर मनकी सब बातें उन लोगोंको कह सुनायीं । धवलकी बातें सुन, चारोंको बहुत ही आश्चर्य हुआ । वे कहने लगे—“ऐसे पाप-विचारको हृदयमें स्थान देना भी उचित नहीं । कुमार जैसे सज्जन पुरुषका नाश कैसे किया जा सकता है ? पर-स्त्रीका तो विचार भी चित्तमें न आने

देना चाहिये, इसलिये इन विचारोंको सदाके लिये हृदयसे निकाल दीजिये । कुमार थे तो आज आप जीवित हैं । कुमार न होते तो आज आपकी न जाने क्या अवस्था हुई होती ? आप को तो आजन्म उनके कृणी रहना चाहिये । उनका हित-चिन्तन करना चाहिये । सौभाग्य-वश उन्हें धन और स्त्रियोंकी प्राप्ति हुई है । इसमें आपके लिये सन्तर्पका कौन सा विषय है ? आपको तो इसके लिये प्रसन्न ही होना चाहिये । यदि आप हमारी बात न मान कर कुमारका अनिष्ट चिन्तन करेंगे, तो यह अच्छी तरह स्मरण रखिये, कि आपको लेनेके देने पड़ जायेंगे ।”

धवल सेठको यह उपदेश दे चारमेंसे तीन तो अपने-अपने स्थानको चले गये, किन्तु एक मित्र वहीं बैठा रहा । वह कुछ नीच प्रकृतिका मनुष्य था । सबके सामने तो उसने सबकी हाँ-में-हाँ मिला दी थी; किन्तु एकान्त मिलते

ही वह धवल सेठको उलटा पाठ पढ़ाने लगा । उसने कहा—“इन तीनोंकी बातें ध्यान देने योग्य नहीं हैं । बिना पाप किये धनकी प्राप्ति नहीं होती । पहले पापसे धन प्राप्त करना चाहिये । फिर धनसे पाप-मुक्त हो सकता है । इसलिये मेरी तो यही सलाह है कि जैसे हो वैसे आपको अपना काम पूरा करना चाहिये । इसका सबसे बढ़िया उपाय यह है कि कुमारको मीठी-मीठी बातोंसे कसाइये । उससे घनिष्टता बढ़ाइये । जब वह बातोंमें आ जाये, तब मौका देख कर उसका काम तमाम कर दीजिये । मेरी तो दृढ़ धारणा है कि इसमें आपको अवश्य सफलता प्राप्त होगी और आज जो कुमारका है, वह किसी-न-किसी दिन आपका हो जायगा ।”

“विनाश-काले विपरीत बुद्धिः” इस कहावत के अनुसार धवल सेठको यह बातें प्रसन्द आ गयीं । उसकी मति पलट गयी । वह नाना प्रकारसे कुमारके साथ घनिष्टता बढ़ानेकी चेष्टा

करने लगा । कुमारसे मीठी-मीठी बातें करना, अधिक समय तक उनके पास बैठे रहना और उनकी खुशामद करते रहना ही अब धवल सेठका नित्य-कर्तव्य हो पड़ा ।

एक दिन धवल सेठने मौका देख, जहाँजहाँ के बाहर लटकते हुए एक मंचानपर चढ़कर आश्चर्य-पूर्वक कहा—“कुमार ! देखिये, देखिये । यह कितने आश्चर्यकी बात है, कि एक मगरके आँठ मुँह हैं ! जो कभी कानों नहीं सुनी, वही आज आँखों देख रहा हूँ । देखना हो तो शीघ्र ही आइये, वरना फिर कहेंगे कि मुझे क्यों न बतलाया ?”

कौसूहलवश कुमार तुरन्त ही वहाँ जा पहुँचे, किन्तु मंचान बहुत ही छोटा था । उस पर एक साथ दो आदमी बैठ या खड़े नहीं हो सकते थे; इसलिये धवल सेठ उस परसे उतर पड़ा । मंचान खाली पाते ही कुमार उसपर चढ़ गये । इस ओर धवल सेठ और उसका कपटी



ज्योही कुमारने मचान पर पैर रखा, ह्योही उन
दोनोंने दोनो ओरसे मचानकी रस्सियाँ काट दीं ।

(पृष्ठ ११७)

मित्र दोनों तैयार खड़े थे । ज्योंही कुमारने मचान पर पैर रक्खा, त्योंही उन दोनोंने दोनों ओरसे मचानकी रस्सियाँ काट दीं । कुमार श्रीपाल उसी समय अथाह सागरमें जा पड़े !

समुद्रमें गिरते ही कुमारने नवपदका ध्यान किया । उत्तम पुरुष आपत्ति-कालमें अपने इष्ट देवको ही स्मरण करते हैं । नवपदका स्मरण करते ही एक मगरने श्रीपालको अपनी पीठ पर चढ़ा कर समुद्र-तट पर पहुँचा दिया । हाथमें बँधी हुई “जल-तरणी” जड़ी और सिद्धचक्रके प्रतापसे कुमारको कुछ भी तकलीफ न हुई ।

मगरने कुमारको जिस तट पर उतारा था, वह कोकण देशका किनारा था । समुद्र-तटसे कुछ ही दूर चलने पर कुमारको एक जंगल मिला । थकावटके कारण श्रीपाल कुमार एक चम्पक वृक्षके नीचे लेट गये । लेटते ही उन्हें निद्रा आ गयी । यद्यपि प्रत्यक्ष रूपसे इस समय उनका कोई रक्षक न था, तथापि जिस धर्मने

समुद्रमें उनकी रक्षा की थी, वही धम इस समय भी उनकी रक्षा कर रहा था ।

पुण्यात्माको यदि दुःख मिलता है, तो वह भी उसके लिये सुखका कारण हो पड़ता है । प्रायः उसको कष्ट होताही नहीं । दावानल उस के लिये मेघ-राशि हो जाता है । भीषण सर्प सुशोभित पुष्प-माला बन जाता है । जलमें स्थल, जंगलमें मंगल और विषका अमृत हो जाता है । पुण्य-प्रतापही ऐसा है । इसके प्रतापसे दुर्जनों के भीषण षड्यन्त्र भी बेकार हो जाते हैं । और जो कार्य कष्ट पहुँचानेके उद्देश्यसे किये जाते हैं, वही मङ्गल-जनक सिद्ध होते हैं ।

कुछ समय तक सोनेके बाद, जब कुमारकी नींद खुली तो उन्होंने देखा कि छुड़सवारोंकी एक बहुत बड़ी संख्या उनके चारों ओर बड़े कायदेसे खड़ी है और सब लोग सेवककी भाँति उनकी आज्ञाकी राह देख रहे हैं ! तुरन्तही उन सवारों का सरदार कुमारकी ओर अग्रसर हुआ । उनके

समीप पहुँच, उसने कुमास्को बतलाया कि इस देशका नाम कोकण है । ठाणापुरी नामक नगरीमें इसकी राजधानी है । यहाँके राजाका नाम वसुपाल है । वह बहुत ही प्रजावत्सल हैं । अभी कुछ ही दिनकी बात है कि एक दिन राजा अपनी राज-सभामें बैठे हुए थे । अचानक एक नैमित्तिक वहाँ आ पहुँचा । राजाने उसकी समुचित अभ्यर्थना करनेके बाद उसे कहा— “यदि आप निमित्त-शास्त्रके ज्ञाता हैं तो बतलाइये, कि मेरी मदनमञ्जरी नामक कन्याका पति कौन होगा ? वह कहाँ मिलेगा ? हम लोग उसे कैसे पहचान सकेंगे ? और किस मासकी किस तिथीको उससे हमारी भेंट होगी ?”

नैमित्तिकने कहा—“हे राजन् ! हमारा निमित्त-शास्त्र ध्रुवकी भाँति अटल है । सुनिये, वैशाख शुक्ला दशमीके दिन ढाई प्रहर दिन चढ़ने पर समुद्रके तटपर यदि आप खोज करेंगे, तो कन्याके पतिसे आपकी अवश्य भेंट

हो जायगी । वह एक जंगलमें चंपक-वृक्षके नीचे सोता हुआ मिलेगा । उसे आराम पहुंचाने के लिये उस वृक्षकी छाया स्थिर हो जायगी ।”

नैमित्तिककी इस बातपर राजाको विश्वास न हुआ । वे कहने लगे कि—“यह केवली थोड़े ही है, जो इस प्रकार सब बातें बतलाता है ?” इस प्रकार संशयशील होनेपर भी नैमित्तिककी बातमें कहाँतक सत्यता है, यह जाननेके लिये उन्होंने हम लोगोंको यहाँ भेजा है । हम देखते हैं कि, नैमित्तिकने एक भी बात झूठ न कही थी । अब आपसे हमारी यही प्रार्थना है कि कृपया आप हमारे साथ चलिये और राज-कुमारीका पाणि-ग्रहण कर राजाकी चिन्ता दूर कीजिये ।

यह सब बातें श्रीपालसे निवेदन कर सरदारने एक तेज घोड़ा मंगाया । श्रीपालसे उसपर बैठ अपने साथ चलनेकी प्रार्थना की । श्रीपालको इसमें कोई आपत्ति दिखाई न दी । वे तुरन्त

अश्वारूढ़ हो, उन लोगोंके साथ चल पड़े । वास्तवमें कर्मकी शक्ति बड़ी विचित्र है । कल जो श्रीपाल समुद्रमें पड़े हुए, जीवन-मरणकी समस्या हल कर रहे थे, वही आज राजाके अनुचरों द्वारा सम्मानित होकर उसके अतिथी बनने जा रहे हैं ।

राजाने ज्योंही यह समाचार सुना. त्योंही वह भी अपने परिजनोंको साथ ले, श्रीपालका स्वागत करनेके लिये सम्मुख आया । रास्तेहीमें दोनों की भेंट हो गयी । राजा उन्हें आदरपूर्वक अपने नगरमें ले आये । नगर-निवासी भी श्रीपालको देखनेके लिये उत्सुक हो रहे थे । नगरमें उनकी सवारी निकलतेही चारों ओर दर्शकोंका समुद्र उमड़ पड़ा । जिसकी दृष्टि श्रीपाल पर पड़ती, वही उनके रूप-लावण्य और गाम्भीर्यकी प्रशंसा करने लगता । राजाने बड़ेही सम्मान-पूर्वक श्रीपालके ठहरनेके लिये एक सुन्दर महल की व्यवस्था कर दी ।

पाठकोंको स्मरण होगा, कि एक नैमित्तिक ने राजासे पहले ही यह सब बातें बता दी थीं । राजाने तुरन्तही उस नैमित्तिकको बुला भेजा और उससे राज-कुमारीके विवाहका मुहूर्त पूछा । नैमित्तिकने कहा—“आजके दिनसे बढ़कर कोई उत्तम मुहूर्त नहीं । यह सुनकर राजाने तुरन्त तैयारियाँ करायीं । उसी दिन श्रीपालके साथ मदनमञ्जरीका व्याह करा दिया । राजाने दहेजमें श्रीपालको अनेक हाथी घोड़े और वस्त्राभूषण आदि प्रदान किये ।

कर्म-भोगके कारण केवल एक रात्रि दुःख भोगनेके बाद दूसरे दिन श्रीपाल नाना प्रकारकी सुख-सम्पत्तिके अधिकारी हुए और राजाके दिये हुए निवास-स्थानमें रहकर सुख-भोग करने लगे ।

राजाने श्रीपालसे अनेक बार कहा, कि—“आपको राज्यमें जो पद पसन्द हो, उस पर आपकी नियुक्ति कर दी जाय ।” किन्तु श्रीपाल

ने राजाके बारंबार कहने पर भी कोई पद स्वीकार न किया । अन्तमें राजाने जब बहुत ही अनुरोध किया, तब श्रीपालने 'थगीधर'का पद स्वीकार करनेकी इच्छा प्रकट की । राजाके प्रिय-पात्र और गुणीजनोंको पान देकर उन्हें सम्मानित करना, 'थगीधर'का कर्तव्य है । यह पद बहुत ही ऊंचा और माननीय कहलाता है । राजाने तुरन्त ही इस पदपर श्रीपालकी नियुक्ति कर दी । अब श्रीपाल ससुरालमें रह कर अपनी नव-विवाहिता स्त्रीके साथ आनन्द अनुभव करने लगे ।





चक्रेश्वरी-देवीका आविर्भाव ।



धर श्रीपाल ससुरालमें सुखापभोग कर रहे थे, उधर समुद्रमें धवल सेठ मारि आनन्दके फूलों न समाता था । नाम

धवल सेठ होने पर भी उसका हृदय बहुत ही कलुषित था । श्रीपालको समुद्रमें ढकेल देनेपर उसे अत्यधिक आनन्द हुआ । उसे कभी इस तरहकी कल्पना भी न थी, कि यह कार्य इतनी आसानीसे सिद्ध हो जायगा । श्रीपालकी समस्त सम्पत्ति और उनकी दो रानियोंका, अपने आपको अधिकारी समझ, वह मन-ही-मन आनन्द मनाने लगा । वह कहने लगा—
“इस संसारमें मुझसे बढ़कर कोई भाग्यशाली

नहीं । दैव ही मुझपर प्रसन्न मालूम होता है । खैर, अब इन दोनों सुन्दरियोंको वश करना चाहिये । बिना राजी किये बलात् प्रेम न हो सकेगा । यदि बलात् सम्बन्ध किया जायगा, तो आनन्द भी मिलना असम्भव है । उन्हें वश करनेके लिये पहले उनके प्रति कृत्रिम सहानुभूति प्रकट करनी होगी—उनके दुःखसे दुःखी होनेका ढोंग करना होगा । पश्चात् मीठी-मीठी बातें बनाकर उन्हें अपने हाथमें कर सकेंगे ।”

इस समय धवल सेठका हृदय मारे खुशी-के नाच रहा था । फिर भी रानियोंको दिखलानेके लिये वह फूट-फूट कर रोने लगा । कभी वह पछाड़ खाकर गिरता, कभी माथा पटकता और कभी छाती कूट-कूट कर बड़े वेगसे रोने लगता । अचानक उसकी यह अवस्था देख कर सब लोग चारों ओरसे दौड़ आये । उससे इस तरह रोनेका कारण पूछने लगे । धवल सेठने बिलख कर कहा—“क्या कहूँ, कहते कलेजा

फटा जाता है । हाय ! हम लोगोंका सर्वनाश हो गया । कुमार श्रीपाल मगरमच्छ देखनेके लिये इस मन्त्र पर चढ़े थे, किन्तु इसकी रस्सियाँ टूट जानेके कारण वे समुद्रमें जा पड़े । हाँ दैव ! तूने यह क्या किया ? हाँ कुमार ! हम लोगोंको इस तरह मन्त्रधारमें छोड़कर कहाँ चले गये !”

धवल सेठकी यह भयङ्कर बात सुनते ही कुमारकी दोनों रानियाँ मूर्च्छित होकर गिर पड़ी । उनकी सखी-सहचरी और दासियाँ भी घबड़ा गयीं । उन्होंने दोनोंको होशमें लानेकी बड़ी चेष्टा की । नाना प्रकारके उपचार करनेपर कुछ समयमें दोनोंको होश हुआ । होशमें आते ही दोनों रानियाँ बड़े ही करुण स्वरसे विलाप करने लगीं । उस समय उनकी जो अवस्था थी, वह वर्णन नहीं की जा सकती । उनका हृदय मारे दुःखके फटा जाता था । अभी उन दोनोंके पाँवका महावर भी न छूटा था, अभी

उनके ब्याहकी चूनरी भी मैली न हुई थी ।
ऐसी अवस्थामें उनके लिये यह दुःख असह्य हो
पड़ना स्वाभाविक था ।

जिस समय दोनों रानियाँ विलाप कर रही
थीं, उस समय धवल सेठ भी उनके पास जा
पहुँचा । और उन्हें दिखानेके लिये फूट-फूटकर
रोने लगा । कुछ देर तक रोनेके बाद उसने
गम्भीरता धारण कर रोती हुई रानियोंको दि-
लासा देनेका ढोंग करते हुए कहा—“सुन्दरो !
इस प्रकार रोने-कलपनेमें अब कोई सार नहीं
है । संसारमें जो मनुष्य जन्म लेते हैं, वे एक-
न.एक दिन मरते ही हैं । कुमार तब जहाँ
रहे'गे वहाँ मणि, माणिक और मुक्ताफल का
भाँत शिरमौर होकर ही रहे'गे । हमें भाँ अब
शोक करना छोड़, अपने शेष जीवनको सुखा
बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये । जहाँ हम लागा
की कोई गति नहीं है, हम लोग जिस बातके
लिये इच्छा करने पर भी कुछ नहीं कर सकते ;

उस बातके लिये, हमको अब शोक करना उचित नहीं ।

धवल सेठकी संदेह-जनक बातोंको श्रवण कर दोनों रानियोंको उसपर शंका हो गयी । वे अपने मनमें कहने लगीं—“हो न हो, इसी पापीने यह काम किया है । धन और स्त्रियोंके प्रलोभनमें पड़कर इसीने हमारे स्वामीको समुद्रमें हकेल दिया है । इस समय तो यह मीठी-मीठी बातें बना रहा है, किन्तु इसकी बातें कपटसे भरी हुई हैं । किसी दिन अवसर मिल-तेही हम लोगोंका सतीत्व नष्ट करनेकी चेष्टा यह अवश्य करेगा । दैवने हमें निराधार बना दिया है ! इसके पार्श्विक-बलके सामने हम लोग कैसे ठहर सकेंगी ? उत्तम तो यही होगा, कि हम लोग भी समुद्रमें गिरकर अपना प्राण दें दें, ता कि एक साथही इन सब भङ्गटोंका अन्त आ जाय ।”

जिस समय दोनों रानियाँ यह बातें सोच



हाथमें चक्र घुमाती हुई, सिंह-वाहिनी चक्रेश्वरी देवीने पदार्पण किया । उन्होने आते ही धवल सेठको बुरी सलाह देनेवाले, उस चौथे मित्रको मार डाला । (पृष्ठ १२६)

रही थीं, उसी समय बड़े जोरोंका तूफान उठा । समुद्रमें बड़ी बड़ी तरंगे-हिलोरे उठने लगीं । आकाश बादलोंसे घिर गया । चारों ओर अन्ध-कार ही अन्धकार दिखलाई देने लगा । बादलों की गरजना और बिजलीका चमकना बहुत ही भयावना मालूम होता था । इसी समय वायु के कई झोंके इतने जोरके आये कि नौकाओंके पालकी रस्सियाँ टूट गयीं । सब लोगोंके हृदय काँप उठे । कई लोग अनेक तरहके संकल्प-विकल्प करते थे । सबको अपने-अपने प्राणकी पड़ी थी । सब कोई मन-ही-मन ईश्वरका स्मरण कर रहे थे । इसी समय डमरू बजाते हुए, हाथमें खड्ग लिये, एक क्षेत्रपाल प्रकट हुए । उनके पीछे बावन वीरोंकी सेनाके साथ, हाथमें चक्र घुमाती हुई, सिंह-वाहिनी चक्रेश्वरी देवीने पदार्पण किया । उन्होंने आते ही धवल सेठको बुरी सलाह देनेवाले, उस चौथे मित्रको मार डाला । अनन्तर क्षेत्रपालने उसके शरीरको खंड-खंड कर

समुद्रमें फेंक दिया । अपने मित्रकी यह गति देख कर धवलके देवता कूच कर गये । उसका दुर्बल हृदय भयके कारण काँप उठा । उसी समय उसने दोनों रानियोंको शरण ली । यह देख, चक्रेश्वरीने कहा—“हे पापात्मा ! सतियोंकी शरण लेनेके कारण आज तो मैं तुम्हें छोड़ देती हूँ, किन्तु यह अच्छी तरह स्मरण रखना, कि अब कभी अन्यायका विचार भी मनमें लाया, तो तुम्हें जिन्दा न छोड़ूंगी ।”

धवल सेठको इस प्रकार शिक्षा दे, देवीने दोनों रानियोंको अपने पास बुलाकर कहा—“तुम लोग जरा भी चिन्ता न करो । तुम्हारे पति कुशल हैं । वे अपनी नयी ससुरालमें मौज कर रहे हैं । आजके तीसवें दिन तुम्हें वे अवश्य मिलेंगे । लो, मैं तुम दोनोंको एक-एक पुष्प-माला देती हूँ । यत्न-पूर्वक रखना । ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा, त्यों-त्यों इनकी सुगन्ध बढ़ती जायगी । इन मालाओंकी विशेषता यह है, कि

इनके प्रतापसे तुम्हारे सतीत्वकी रक्षा होगी । गलेमें इन मालाओंको पहने रहना, फिर यदि तुम्हें कोई कुदृष्टिसे देखेगा तो वह कुछ दिनोंके लिये अन्धा हो जायगा ।”

इतना कह, चक्रेश्वरी देवी सदल-बल अन्तर्धान हो गयी । साथ ही सब तूफान भी शान्त हो गया । समुद्र फिर अपनी पूर्वावस्थामें आ गया और सब नौकार्यें यथानियम अग्रसर होने लगीं ।

यह सब हाल देख कर, धवलसेठके वे तीनों मित्र उसके पास पहुँचे । उन्होंने कहा—“सेठजी ! हमारी बात न माननेका क्या फल हुआ, सो तुमने देख लिया । तुम्हारा एक संगी जानसे मारा गया । तुम्हें भी बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा । खैर, अब भी कुछ बिगड़ा नहीं । सुबहका भूला शामको घर आ जाय, तो वह भूला नहीं कहाता । अब कभी भूल कर भी पर-धन या पर-स्त्रीकी इच्छा न करना । अपने मनमें किसी

बुरे विचारको स्थान न देना । यदि अब भी हमारी बात न मानोगे तो फिर पछताओगे ।”

पापी धवल सेठ पर मित्रोंके इस उपदेशका कोई प्रभाव न पड़ा । उसके विचार ज्योंके त्यों मैले बने रहे । वह अपने मनमें कहने लगा — ‘जब इतना बड़ा संकट दूर हो गया तो अब चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं ।’ यह सोचकर कुछ ही दिनोंके बाद उसने श्रीपालकी रानियोंके पास एक दूती भेज कर कहलाया कि तुम्हारा दासानुदास धवल सेठ तुम्हारे प्रेमकी भिन्ना माँग रहा है । यह सुनते ही रानियोंने उसी समय दूतीको गर्दन पकड़, निकाल बाहर किया । किन्तु इससे भी कामान्ध धवल सेठको चेत न हुआ । एक दिन वह स्वयं स्त्रीका वेश धारण कर धृष्टता-पूर्वक उन रानियोंके पास जा पहुँचा । ज्योंही उसने अपनी पाप-दृष्टि उन सतियों पर डाली, त्योंही उसकी आँखें मानों झुलस गयीं । दासियोंने उसकी दिल्लीगी

उड़ा कर उसी समय निकाल बाहर किया । तदनन्तर चक्रेश्वरी देवीके कथनानुसार धवल सेठको कई दिनों तक कुछ भी न दिखाई दिया ।

किन्तु धवल सेठने इस घटनासे भी कोई शिक्षा ग्रहण न की । वह अपने मनमें कहने लगा—“किसी-न-किसी दिन तो यह मेरी बात माननेके लिये अवश्य ही बाध्य होंगी ।” खैर, इस समय उनका विचार छोड़, अब वहां वह सोचने लगा कि श्रीपाल जिस समय समुद्रमें गिरे थे, उस समय दक्षिण ओरकी हवा चल रही थी, इसलिये वह यदि जीते बचे होंगे, तो दक्षिणकी ओर गये होंगे । अतः उस तरफ न जाकर उत्तरकी ओर चलना चाहिये । यह सोच कर उसने अपने नाविकोंको उत्तरकी ओर चलनेकी आज्ञा दी । किन्तु हवा ऐसी उल्टी चल रही थी, कि हजार माथा मारने पर भी नौकायें उस ओरको चलायी न जा सकी ।

अन्तमें लाचार हो, उन्हें दक्षिणकी ही ओर अग्रसर होना पड़ा । कुछ ही दिनोंमें वे लोग कौकण देशके तट पर आ पहुँचे । धवल सेठने उस प्रदेशके एक विशाल घाट पर अपनी नौ-कायें खड़ी करवा दीं । अनन्तर वह प्रथानुसार भेंटकी सामग्री ले, राजाकी सेवामें उपस्थित हुआ ।

बहुमूल्य वस्तुओंके साथ धवल सेठको उपस्थित देख, राजाने उसको बहुत ही सत्कार किया और उसे अपनी दाहिनी ओर एक बहुत ही उत्तम आसन पर बैठाया । बैठते ही धवल सेठकी दृष्टि थगीधरके आसन पर बैठे हुए श्रीपाल कुमार पर जा पड़ी । उन्हें देखते ही वह मानों सूख गया । काटो तो लहू नहीं—ऐसी हालत हो गयी । जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशसे उल्लूकी आँखें बन्द हो जाती हैं, उसी प्रकार श्रीपालको देख कर धवल सेठकी आँखें बन्द हो गयीं । उसका पापी हृदय

टूक-टूक हुआ जाता था, किन्तु क्या करे, इस समय कोई उपाय न था। राजाने श्रीपालके हाथसे उसे पान दिलाये। इस समय उन्हें देख कर धवल सेठने अच्छी तरह इतमिनान कर लिया, कि उसकी आँखें उसे धोखा तो नहीं दे रही हैं ? श्रीपालने भी धवल सेठको तुरन्तही पहचान लिया, किन्तु वे बड़े ही गम्भीर थे। उनके चेहरे पर रश्ममात्र भी किसी नवीन भावकी झलक न दिखाई दी।

श्रीपालको देखकर धवल सेठको बड़ा ही अफसोस हुआ। वह मन-ही-मन कहने लगा —“अहो, जिसे मैंने अपनी राहका काँटा समझ, समूल नष्ट कर दिया था, फिर भी वह अभी ज्योंका त्यों बना हुआ है। अब तो बिना इसका निकन्दन किये, मैं हरगिज सुखी नहीं हो सकता।” जिस समय धवल सेठ इस तरह की बातें सोच रहा था, उसी समय राजाने सभा

विसर्जित कर दी । धवल सेठ भी सभा-भवन-से बाहर निकल आया ।

बाहर निकलते ही उसने एक द्वार-पालसे श्रीपालका परिचय पूछा । द्वार-पालने कहा—
“महाराज ! इस पुरुषका इतिहास बड़ा ही विचित्र है । यह न जाने कहाँसे यहाँ आ पहुँचा । समुद्रके तट पर एक दिन सो रहा था । वहाँसे लाकर राजाने इसके साथ अपनी कन्याका विवाह कर, इसे ‘थगीधर’ बना दिया । न जात पूछी न पाँत । बड़े आदमियोंका मामला है, वर्ना न जाने क्या हो जाता ।”

द्वार-पालकी यह बात सुन, धवल सेठको बड़ा ही आनन्द हुआ । वह अपने मनमें सोचने लगा—
“श्रीपालको नीच जातिका प्रमाणित कर उसे नीचा दिखाना चाहिये । यदि मुझे अपने इस कार्यमें सफलता मिल गयी, तो निःसन्देह राजा क्रुद्ध हो, श्रीपालको प्राण-दण्डकी आज्ञा दे देगा और मेरी राहका यह काँटा दूर हो जायगा ।

यद्यपि अब तक मैंने जिसने उपाय किये, वे सभी व्यर्थ प्रमाणित हुए । फिर भी निराश होनेका कोई कारण नहीं । उद्योग करने पर सभी कार्य सफल होते हैं । उद्योग ही सब सुखोंका मूल है । श्रीपाल मेरा परम शत्रु है । इसे बढ़नेका अवसर कदापि न देना चाहिये । जैसे हो वैसे, इसका सर्वनाश ही करना उचित है ।”

इस तरह सोच-विचार करता हुआ धवल सेठ अपनी नौकाओंकी ओर लौट चला । वहाँ पहुँचते ही कुछ भाँड लोग गाते-बजाते उसके पास जा पहुँचे । उन्हें देखते ही धवल सेठको एक नयी बातकी कल्पना आयी । इसी समय उसने उनके अगुआको अपने पास बुला कर कहा—“तुम हमारा एक काम करोगे ? यदि कर सको तो मैं तुम्हें मालामाल करनेके लिये तैयार हूँ ।”

भाँडने कहा—“हम लोग रुपयोंके ही लिये

तो नाचते-गाते और दर-दर मारे फिरते हैं ।
रुपया मिले तो संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं,
‘जो हम न कर सकें ।’

धवल सेठने कहा—“अच्छा, सुनो । इस
राजाके दरबारमें जो थगीधर है, उसे तुम लोग
अपना जाति-बन्धु और नाते-रिश्तेदार बताकर
उसके गलेसे लिपट जाओ । यह काम इतनी
सफाईके साथ करना होगा, जिसमें देखनेवालों
के मनमें यह दृढ़ धारणा हो जाय, कि वह
तुम्हारा ही जाति-बन्धु है । यदि यह काम तुम
अच्छी तरह कर सके तो मैं तुम्हें एक लाख
रुपये नकद दूंगा ।”

भाँडने कहा—“बस, अब आपको अधिक
न कहना होगा । हम ऐसा हुनर दिखावेंगे, कि
किसीको जरा भी सन्देह न होने पायगा ।
जब हम आपका यह काम पूरा कर दें, तब
हमें हमारी मिहनतके रुपये और इनाम दोनों
दीजियेगा ।”

इस प्रकार धवल सेठसे सब बातें तय हो जानेपर, भाँड़ोंका यह दल राज-सभामें पहुँचा। वहाँ बड़ी देरतक नाच-गान और हँसी-दिल्लंगी द्वारा राजाका मनोरञ्जन करते रहे। अन्तमें राजाने प्रसन्न होकर कहा—“तुम्हें जो इच्छा हो, माँग लो। मैं सहर्ष देनेको तैयार हूँ।” भाँड़ोंने कहा—“राजन् ! हम आपहीका अन्न खाते हैं। आपकी कृपासे हमें रुपये-पैसोंकी कमी नहीं है। यदि आप प्रसन्न हैं तो कोई ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हमारी प्रतिष्ठामें वृद्धि हो।”

भाँड़ोंकी यह बात सुन, राजाने थगीधरको संकेत किया। श्रीपाल तुरन्त ही भाँड़ोंको पान देनेके लिये उठ खड़े हुए। उनकी प्रतिष्ठा बढ़ानेका इससे बढ़कर दूसरा उपाय न था। ज्यों ही श्रीपाल कुमार उस बूढ़े भाँड़के समीप पहुँच कर उसे पान देने लगे, त्यों ही वह आँखें फाड़-फाड़ कर उन्हें देखने लगा। कई बार नीचेसे

ऊपर तक निगाह डालनेके बाद, वह हँसता हुआ, कुमारके गलेसे चिपट गया और कहने लगा कि—“वाह, बेटा ! आज न जाने मैं किसका मुँह देख कर उठा था, कि इतने दिनोंके बाद तुझसे भेंट हुई । बेटा ! तू हम लोगोंको छोड़ कर कहाँ चला गया था ? आज तुझे इस तरह जीता-जगता और स्वस्थ देख कर हमें बड़ा ही आनन्द हो रहा है ।”

बूढ़ेकी बात पूरी भी न होने पायी थी, कि दूसरी ओरसे एक बुढ़िया आकर बेटा-बेटा कहती श्रीपालके शरीरसे चिपट गयी । फिर तो मानो स्वजन-स्नेहियोंका ताँता ही बँध गया । एक स्त्री श्रीपालकी बहन बन गयी, एक लड़का भाई बन गया, एक आदमी मामा बन गया, एक जन भानजा बन गया, एक बुढ़िया काकी बन गयी, एक स्त्री मामी बन गयी । इसी तरह सभी भाँडोंने कोई-न-कोई रिश्तेदारी निकाल कर श्रीपालको चारों ओरसे घेर लिया और इस

प्रकार हर्ष व्यक्त करने लगे, मानों वास्तवमें वरसोंसे बिछुड़े हुए किसी मनुष्यसे भेंट हुई हो । अन्तमें उस वृद्ध भाँडने राजासे कहां—
 “हे राजन् ! आज मुझे जो आनन्द हो रहा है, वह मैं वर्णन नहीं कर सकता । यह मेरा पुत्र है । बहुत दिन हुए कुछ अप्रसन्न होकर चुपचाप न जाने कहाँ चला गया था । आज ईश्वरकी कृपासे यहाँ अचानक भेंट हो गयी । यह सब मेरे परिवारके ही लोग हैं । केवल इसी पुत्रके बिना मेरा घर अन्धकार मय हो रहा था । आज इसके मिल जानेसे हम लोगोंका वह दुःख दूर हो गया । इसके लिये उस परमात्माको, साथ ही आपको भी मैं अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ ।”

भाँडकी यह बातें सुन, राजा बड़ी चिन्तामें पड़ गये । उनका जी सूख गया । वे अपने मनमें कहने लगे—“हाय ! मैं यह क्या कर बैठा ! बिना जाति-पाँति और कुल जाने, मैंने

इसके साथ अपनी कन्याका विवाह क्यों कर ढाला। वास्तवमें यह कार्य बड़ा ही अनुचित हो गया। भाँडकी बातोंपर सन्देह करनेका भी कोई कारण नहीं। क्योंकि यह सब इसके स्वजन-सम्बन्धी ही मालूम होते हैं। अफसोस ! इसने हम सबको धर्म-भ्रष्ट कर दिया।”

इन विचारोंके कारण राजाके मनमें बड़ी खलबली पैदा हो गयी। उसने तुरन्त नैमित्तिक को बुला भेजा। नैमित्तिक उसी क्षण सभामें आ, उपस्थित हुआ। उसे देखते ही राजाके क्रोधका ज्वालामुखी फट पड़ा। उसने गरज कर कहा—“क्योंरे, नैमित्तिक ! मेरे साथ यह चाल ! यह विश्वासघात ! तूने पहलेसे क्यों न बतलाया कि यह जातिका भाँड है।”

नैमित्तिकने कहा—“सरकार ! मैंने जो उस समय कहा था, वही मैं अब भी कह रहा हूँ। यह अनेक मातंगोंका स्वामी है। मेरी बात कभी झूठी नहीं हो सकती।”

राजाने नैमित्तिककी यह बातें समझना तो दूर रहा, पूरे तौरसे सुना भी नहीं । उसे नैमित्तिक और श्रीपाल दोनों पर बड़ा क्रोध आया । उसने दोनोंका प्राण ले, अपने क्रोधको शान्त करना स्थिर किया । मन-ही-मन वह इसके लिये आयोजन करने लगा ।

नगरमें चारों ओर विद्युत्-वेगसे यह समाचार फैल गया । राज-कुमारी मदनमञ्जरीको भी यह बात शीघ्रही मालूम हो गयी । वह उसी समय अपने पिताके पास पहुँची । उसने उन्हें समझाते हुए कहा—“पिताजी ! जो कुछ करना हो, वह बहुत सोच-विचार कर कीजियेगा । ‘बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछितायु ।’ इन भाँडोंकी बातका खयाल न करिये । इसमें मुझे कुछ रहस्य मालूम होता है । रह गयी, कुमारके कुल और वंशकी बात, सो यह किसीके छिपाये नहीं छिपती । मनुष्यके आचरणोंसे ही उसके कुल और जातिकी परीक्षा हो जा सकती है ।

इसलिये आप किसी बातका दुःख न करें । अच्छी तरह सोच-विचार करनेके बाद ही कोई कार्य करें ।”

कुमारीकी यह बातें सुन, राजाने कुमारको अपने पास बुला कर कहा—“अपने कुल और वंशका मुझे परिचय दीजिये ।” कुमारने कहा—“राजन् ! उत्तम पुरुष अपने मुंहसे अपने कुल और वंशका परिचय कदापि नहीं देते । उनके कार्य ही उनके कुलको प्रकट कर दिया करते हैं । यदि आप मेरा कुल जानना ही चाहते हैं तो अपने समस्त सैन्यको युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा दीजिये । एक ओर आपकी सन्तुची सेना रहेगी, दूसरी ओर अकेला मैं रहूँगा । एक तलवारके अतिरिक्त दूसरा हथियार मैं अपने पास न रखूँगा । जिस समय आपकी सेनाके साथ मेरा युद्ध छिड़ेगा, उस समय अनायास आपको मेरे वंशका पता मालूम हो जायगा । लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ कि

इस तरह पानो पीनेके बाद जाति पूछनेसे क्या लाभ होगा ? इस बातकी जाँच तो पहले ही होनी चाहिये थी । खैर, आपको जो अच्छा मालूम हो वही कीजिये । मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपको किसी प्रकारका मनःकष्ट पहुँचाना मेरा अभीष्ट नहीं है । मैं अपने मुँहसे अपने वंशका परिचय कदापि न दूँगा । हाँ, यदि आप कुछ जानना ही चाहते हों, तो मैं एक सरल उपाय भी बतला देता हूँ । आज ही परदेशसे हमारे शहरमें नौकाओंका एक बहुत बड़ा दल आया है । उन नौकाओंमें मेरी दो रानियाँ भी हैं । यदि आप चाहें तो उन्हें बुला कर उनसे सब बातें जान सकते हैं । मुझे विश्वास है कि यह सब बातें बतलानेमें उन्हें कोई आपत्ति न होगी ।”

श्रीपालकी यह बात सुन, राजाने तुरन्त अपने मन्त्रियोंको, उनकी रानियोंको ले आनेकी आज्ञा दी । मन्त्री लोग उसी समय पालखी

लेकर समुद्र-तट पर जा पहुँचे । ज्योंही उन्होंने दासी द्वारा यह समाचार रानियोंके पास भेजा, कि श्रीपालने तुम्हें बुलाया है, त्योंही वे पालखी में बैठ, मन्त्रियोंके साथ चल पड़ीं । उन्हें देख कर राजाको बड़ा ही हर्ष हुआ । श्रीपालको इतने दिनोंके बाद सकुशल देख, रानियाँ भी मारे आनन्दके फूली न समाती थीं । इस समय उन्हें अवर्णनीय आनन्द हो रहा था ।

राजाने शीघ्र ही उन दोनोंसे श्रीपालका वंश-परिचय पूछा । तुरन्त ही विद्याधरकी कन्या ने सारा हाल राजाको कह सुनाया । उसने स्वयं यह सब बातें विद्याचारण मुनिके मुँहसे सुनी थीं । श्रीपालका संमस्त पूर्व-वृत्तान्त सुनाने के बाद उसने कहा—“हम लोग रत्नद्वीपसे प्रस्थान कर स्वदेशकी ओर आ रहे थे । रास्तेमें धवल सैठ नामक एक दुष्ट बनियेने इन्हें समुद्रमें डकेल दिया था । किन्तु पुण्यके प्रतापसे आज फिर हमलोग इन्हें अपने बीचमें देख रही हैं ।”

श्रीपाल कुमारका परिचय प्राप्त कर, राजा-
को अत्यन्त आनन्द हुआ । वे तुरन्त ही उन्हें
पहचान गये । कहने लगे—“यह तो मेरे भानजे
लगते हैं । जो हुआ सो अच्छा ही हुआ । यद्यपि
मैंने बिना जाने-बूझे ही इनके साथ अपनी कन्या-
का विवाह कर दिया था, किन्तु सौभाग्यवश
यह सम्बन्ध मणि और कञ्चनके योग जैसा ही
हुआ है ।”

जिस भाण्ड-भाण्डलीने श्रीपालको अपना
सम्बन्धी सिद्ध करनेकी चेष्टा की थी, उसपर
राजाको अब बड़ा ही क्रोध आयो । उसने उन
सबोंको धमका कर पूछा—“सच कहो, तुम
लोगोंने यह प्रपञ्च-जाल क्यों बिछाया ?
भांडोंने सोचा कि अब सच बात कहे बिना
कल्याण नहीं । झूठ बोल कर अधिक समय
तक लोगोंको नहीं ठगा जा सकता । उसी
समय उन्होंने कांपते हुए कहा—“महाराज !
हम लोगोंसे बड़ा कसूर हुआ । यहाँ आय

हुए एक सेठने हम लोगोंसे यह सब करनेको कहा था । प्रलोभनमें पड़ कर हम लोग उसकी बातोंमें आ गये । हम लोगोंका कसूर तो अवश्य है; किन्तु इसका मूल कारण वह सेठ ही है । उसका नाम 'धवल' है । वह हाल हीमें कसी विदेशसे यहाँ आया हुआ है ।”

भाँड़ोंकी यह बात सुनकर राजाने उसी समय धवल सेठको पकड़ लानेकी आज्ञा दी । आज्ञा मिलनेही वह खोज निकाला गया । उसी समय उसकी मुश्के बाँध ली गयीं । शीघ्र ही वह राजा-के सम्मुख उपस्थित किया गया । धवल सेठने देखा कि इस बार बुरी तरह फँसे । पहले तो श्रीपालने छुड़ाया था, अब 'कौन छुड़ायेगा ? निदान, उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और राजासे क्षमा-प्रार्थना की । किन्तु राजा इस समय आपेसे बाहर हो रहा था । उसे धवल और भाँड़ोंका यह अपराध अक्षम्य प्रतीत हुआ । उसने उसी समय धवल और



इन्हें जैसे हो वैसे छोड़ दीजिये । भाँडोने जो कुछ किया वह प्रलोभनमे पडकर किया, अतएव इनका भी कोई दोष नहीं । कृपया इन सबको शीघ्र ही छोड़ दीजिये ।

(पृष्ठ १४६)

समस्त भाँडोंको शूलीपर चढ़ा देनेकी आज्ञा दे दी ।

श्रीपालसे अब न रहा गया । उनका दयालु हृदय पानी-पानी हो गया । उन्होंने तुरन्त राजा-के पास पहुँचकर उसे अपनी यह आज्ञा वापस लेनेकी प्रार्थना की । उन्होंने कहा—“यह धवल सेठ तो मेरे पिताके सम्मान हैं । इन्होंने मेरे साथ थोड़ी-बहुत बुराई अवश्य की है । किन्तु साथही इन्होंने मुझपर ऐसे-ऐसे उपकार भी किये हैं कि किसी तरह भी उनका बदला नहीं चुकाया जा सकता । इन्हें जैसे हो वैसे छोड़ दीजिये । भाँडोंने जो कुछ किया वह प्रलोभनमें पड़कर किया, अतएव इनाका भी कोई दोष नहीं । कृपया इन सबको शीघ्र ही छोड़ दीजिये ।”

राजा वसुगल, श्रीपालकी बात भला कैसे टाल सकते थे ? उन्होंने तुरन्त धवल सेठ और भाण्ड-मण्डलीको मुक्त कर दिया । नैमित्तिकने भी इस अवसरसे लाभ उठाना उचित समझा ।

अतः उसने राजासे कहा—“महाराज ! देखिये, जो मैं कहता था, वह बिलकुल ठीक निकला न ? अब तो श्रीपाल कुमारके सम्बन्धमें आपको कोई सन्देह नहीं रहा ?”

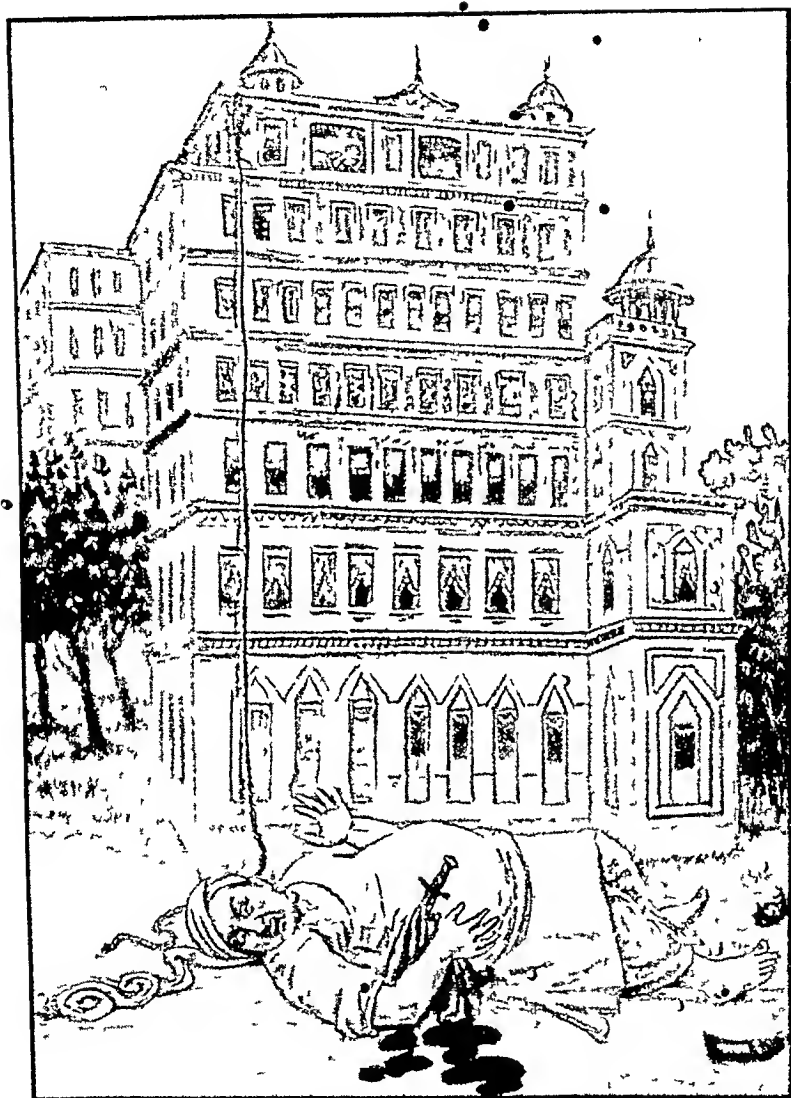
राजाने मुस्करा कर कहा—“नहीं, अब मुझे कोई सन्देह नहीं रहा । तुमने जो बातें कही थीं, वे सब ठीक निकलीं । मैं तुमपर बहुत ही प्रसन्न हूँ । इतना कह, राजाने नैमित्तिकको बहुत सा धन देकर बिदा किया । श्रीपाल भी राजासे बिदा ग्रहण कर तीनों स्त्रियोंके साथ अपने निवास-स्थानमें चले आये ।

धवल सेठने इस प्रकार श्रीपालके साथ अनेक बुराईयाँ कीं । बारंबार उनका सवनाश करना चाहा । किन्तु श्रीपालने सौजन्यवश अपने व्यवहारमें जरा भी अन्तर न आने दिया । अधिकांश समय श्रीपाल उसे अपने साथ रखते, व्यापारादिके सम्बन्धमें उसे सलाह देते । किसी बातमें भी जुदाई न दिखाते । किन्तु धवल

सेठके मनोविचारमें जरा भी परिवर्तन न हुआ । वह पहलेकी ही तरह श्रीपालकी बुराई सोचता और उनका सर्वनाश करनेकी ही चिन्तामें रात-दिन लगा रहता था ।

अब धवलके पापका घड़ा लबालब भर गया था । “विनाश काले विपरीत बुद्धिः” इस लोक-तिके अनुसार अन्तमें उसकी बुद्धि एकदम ही भ्रष्ट हो गयी । उसने सोचा कि चाहे जैसे हो, श्रीपालको परलोकका रास्ता दिखा देना चाहिये । निदान, उसने श्रीपालके महलमें प्रवेश कर रात को उनकी हत्या कर डालना स्थिर किया । किन्तु यह काम सहज न था । श्रीपाल कुमार महलके सातवें खराडमें सोया करते थे । अतः उतना ऊँचे पहुँचना ही बड़ा मुश्किल था । बहुत कुछ सोच-विचार करनेके बाद उसने गोहके सहारे ऊपर चढ़ना स्थिर किया । वह उसी दिन बाजार-से एक बढ़िया गोह और रेशमकी डोरी खरीद लाया । उस दिन बड़ी मुश्किलसे रात बोती ।

एक क्षण भी एक-एक युगकी तरह बीत रहा था । रातको श्रीपाल कुमार यथानियम अपने महलमें सो रहे । आधी रातके समय धवल सेठ पहरेदारोंसे अपनेको बचाता हुआ, महलके समीप पहुंचा । पहुंचते ही उसने गोहकी कमरमें वह रेशमी डोरी बांध, उसे ऊपर फेंक दिया । गोह दीवालसे चिपट गयी । धवल सेठ अपनी कमरमें कटारी लगाकर उस डोरीके सहारे ऊपर चढ़ने लगा । उसे इस प्रकार डोरीपर चढ़नका अभ्यास न था । शरीर भारी और उम्र भी बड़ी थी । किन्तु इस समय उसके शिरपर हिंसाका भूत सवार था । इसी लिये वह ऊपर चढ़ता चला जाता था । किन्तु हम पहले ही कह चुके कि उसके पायका घड़ा भर गया था । अभी वह आधी दूर भी न पहुंचा था कि रस्सी हाथसे छूट जानेके कारण वह नीचे आ गिरा । श्रीपालको मारनेके लिये उसने जो तीक्ष्ण कटारी ली थी, वह इस समय भी उसकी कमरमें मौजूद थी । वही



अभी वह आधो दूर भी न पहुँचा था कि रस्सी, हाथसे
छूट जानेके कारण वह नीचे आ गिरा । (पृष्ठ १५२)

कटारी गिरते समय धवलके पेटमें घुस गयी । फलतः वह कुछ ही क्षणोंमें छटपटा कर इस लोकसे चल बसा । जो कटारी उसने श्रीपाल को मारनेके लिये हाथमें ली थी, वही कटारी इस समय उसके लिये काल हो गयी !

सुबह होते ही लोगोंने चारों ओरसे धवल सेठकी लाशको घेर लिया । गोह, रेशमकी डोरी, कमरमें कटारी—यह सब चीजें धवलके मनो-विचारोंको प्रकाशित कर रही थीं । जो आत्म-वही धिक्कारता और उसकी निन्दा करता । किन्तु श्रीपालने उसके दोषोंको जरा भी अपने हृदयमें स्थान न दिया । जैसे एक पुत्र अपने पिताका अन्तिम संस्कार करता है, उसी तरह श्रीपालने धवल सेठका अन्तिम संस्कार किया । धवल सेठके शरीरान्तसे वे इस प्रकार शोकाकुल दिखाई देते थे, मानों उनके पिताका ही शरीरान्त हो गया हो ।

अन्तिम क्रियासे निवृत्त होने पर श्रीपालने

धवल सेठकी पाँच सौ नौकायें अपने अधिकारमें ले लीं । उसका सारा माल बाजारमें बेच दिया । सब माल बिकनेपर हजारों रुपये इकट्ठे हुए । किन्तु उन्हें उपभोग करनेके लिये धवल सेठ अब इस संसारमें न था । श्रीपालने धवल सेठके तीनों मित्रोंको वह धन और उसकी व्यवस्था का भार सौंप दिया । उनकी इस उदारता और निःस्वार्थताको देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गये । चारों ओर मुक्तकण्ठसे उनकी प्रशंसा होने लगी ।



ग्यारहवां परिच्छेद ।

कुराडलपुरकी यात्रा ।

अब श्रीपाल 'कुमारके दिन बड़े ही आनन्दमें कट रहे थे । वे इस समय अपने श्वसुरके अथिति थे और अपनी तीनों रानियोंके साथ चैनकी बंशी बजाने थे । एक दिन वे बगीचे जा रहे थे । रास्तेमें उन्हें बनजारोंका एक दल मिला । उस दलके सरदारको बुला कर श्रीपालने पूछा—“आप लोग कहाँसे आ रहे हैं और कहाँ जायेंगे ? रास्तेमें आपको कोई आश्चर्य-जनक बात तो नहीं दिखायी दी ?”

सरदारने कहा—“महाराज ! हम लोग

कान्तिपुरसे आ रहे हैं और कम्बुहीपकी ओर जा रहे हैं । रास्तेमें हम लोगोंने एक बड़ी ही आश्चर्य-जनक बात देखी । क्या आप उसे सुनना पसन्द करेंगे ?”

श्रीपालने कहा—“क्यों नहीं ? सुननेके लिये ही तो आपको बुलानेका कष्ट दिया है ।”

सरदारने कहा—“महाराज ! सुनिये, यहाँसे करीब चार सौ कोसपर हमें कुण्डलपुर नामक एक शहर मिला । वहाँ मकरकेतु नामक एक राजा राज करता है । उसकी रानीका नाम कर्पूर तिलका है । उससे दो पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई है । वह पुत्री बहुत ही गुणवान है । रूपमें तो मानो साक्षात् रम्भा है । उसका नाम गुणसुन्दरी है । वह चौसठ कलाओंमें पारंगत है । राग-रागिणी और ताल, स्वर आदिका उसे विशेष ज्ञान है । इसीसे जब वह वीणा बजाती , तब औरोंकी कौन कहे, स्वयं ब्रह्मा भी आठों कान स्थिर कर उसे सुनने लगते हैं । राजकु-

मारी बड़ी हो समझदार है। वह जानती है, कि स्त्री चाहे जितनी पढ़ी-लिखी हो, चाहे जितनी चतुरा हो; किन्तु उसका जीवन तभी सार्थक हो सकता है, जब कि उसे वैसा ही चतुर पति मिले। यदि बिना जाने बूझे, बिना देखे-सुने, किसी पुरुषसे किसी स्त्रीका विवाह कर दिया जाय और फिर उसे मूर्ख पति मिलनेके कारण आजन्म दुखमय जीवन व्यतीत करना पड़े, तो उसमें ईश्वरका क्या दोष ? वह, सदा ईश्वरसे यही प्रार्थना किया करती है कि :—

रुष्ट हो गुणवान पर, जो चाहिये सो कीजिये ।

किन्तु मूर्खोंका कभी मत संग भगवान् दीजिये ॥

अपने इन विचारोंके कारण उसने प्रतिज्ञा की है कि जो वीणा बजानेमें मुझे पराजित करेगा, वही मेरा पति होगा। उसकी इस प्रतिज्ञाकी बात, चारों ओर दूर देशान्तरोंमें भी फैल गयी है। फलतः अनेक राज-कुमारोंने उसे जीतनेके लिये वीणा बजानेका अभ्यास करना आरम्भ किया है।

उसी नगरमें एक गायनाचाय रहते हैं । वे गाने-बजानेकी कलामें बहुत ही निपुण हैं । उनके निकट अनेक धनी-मानो युवक और राज-कुमार इसी विचारसे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं । अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि सारे शहरमें जिसे देखिये, वही इस उधेड़-बुनमें लगा हुआ दिखायी देता है । बाजारमें देखिये, बनिया अपनी दुकानपर बैठा हुआ वीणा बजा रहा है । जंगलमें देखिये, चरवाहे पशु चराते हुए वीणा बजानेकी अभ्यास कर रहे हैं । खेतोंमें देखिये, किसान भी वीणा ही बजा रहे हैं । चारों ओर जिधर जाइये, उधर वीणाकी ही मधुर स्वर सुनायी देता है । व्यापारियोंका व्यापार करनेकी ओर ध्यान नहीं जाता । किसान खेती करना भूल जाते हैं । चरवाहे गौओंको जंगलहीमें छोड़कर वीणाकी धनमें न जाने कहाँ चले जाते हैं । यह सब बातें देख कर हम लोग आश्चर्यसे चकित हो गये हैं । अब तक उस राज-कुमारीकी वीणा-वादमें

कोई जीत नहीं सका । वह जितनी सुशील और सुन्दरी है, उतनी ही गुणवान भी है । यदि आप उसे एक बार देखेंगे, तो निश्चय हमारी बालोंपर विश्वास हो जायगा ।”

सरदारने यह सब बातें बतलाकर बिदा माँगी । कुमारने भी ईनाम देकर उसे बिदा किया । अनन्तर शामको जिस समय वे अपने महलमें आये, उस समय मनमें सोचने लगे कि जैसे भी हो, यह कौतुक देखनेके लिये कुण्डलपुर जाना चाहिये । किन्तु यह कार्य कैसे हो सकेगा ? वह नगर तो यहाँसे बहुत दूरी पर है । वहाँ हम कैसे पहुँच सकते हैं । पैदल होते तो जरूर वहाँ उड़ कर पहुँच जाते और यह कौतुक देखते । किन्तु इस अवस्थामें वहाँ पहुँचना असम्भव ही दिखायी देता है । कुछ समयके अनन्तर श्रीपालको विचार आया कि मुझे यह चिन्ताही क्यों करनी चाहिये ? मुझ पर तो सिद्धचक्रकी पूर्ण कृपा है । वही मेरे सब मनोरथ पूर्ण

करेगा । अब तक मैंने जितने कार्य किये हैं, वह सब सिद्धचक्रकी कृपासे पूर्ण हुए हैं । क्या अब यह कार्य न होगा ? अवश्य होगा । मुझे उसपर अटल विश्वास रखना चाहिये ।”

इस प्रकार विचार कर श्रीपाल सिद्धचक्रका ध्यान करने लगे । थोड़े ही समयमें विमलेश्वर नामक एक देवता प्रकट हुए । वे सौन्दर्य-देवलोकके निवासी थे और सिद्धचक्रके अधिष्ठायांक थे । उन्होंने श्रीपालको एक मणि-माला पहना कर कहा—“हे कुमार ! यह माला बहुत ही प्रभावशाली है । इसके प्रभावसे इच्छित रूपकी प्राप्ति होती है । जहाँ इच्छा हो, वहाँ आकाश मार्गसे जाया जा सकता है । बिना अभ्यासके जो चाहें वह विद्या सीखी जा सकती है एवं सभी तरहके जहरकी असर दूर हो सकती है । मैं सिद्धचक्रका आज्ञाकारी सेवक हूँ । उनके अनेक भक्तोंका मैंने उद्धार किया है । तुम भी इसी तरह सिद्धचक्रकी भक्ति

करते रहना और जब जरूरत हो, तब मुझे याद करना ।”

इतना कह, देवता अन्तर्धान हो गये । अतन्तर श्रीपाल निश्चिन्त होकर सो रहे । सुबह बिछौनेसे उठ कर ज्यों ही उन्होंने कुण्डलपुर जानेकी इच्छा की, त्यों ही उन्होंने अपनेको कुण्डलपुर नगरके दरवाजेपर खड़ा पाया । वहां-का दरवान भी खड़ा-खड़ा वीणा बजा रहा था और राज-कुमारीका गुण-गान कर रहा था । श्रीपालने नगरमें प्रवेश करनेके पहले अपना रूप बदल डालना आवश्यक समझा । अतएव इच्छा करते ही उनका सुन्दर शरीर विरूप हो गया । लम्बा मुंह, तुम्बडी जैसा शिर, छोटी-छोटी आंखें, बेढंगे दांत, बड़े-बड़े होंठ, चिपटी नाक, गिटकी जैसे कान, बड़ासा कूबड़, पीठसे मिला हुआ पेट, छोटी छोटी जांघें, वामनकेसे पैर, ठुमकती हुई चाल प्रभृति देखते ही बनती थीं । उन्होंने इसी विचित्र वेशमें नगर-प्रवेश किया ।

श्रीपालका यह रूप देख कर लोग उनकी हँसी उड़ाने लगे । वे जिधर ही जाते उधर ही लोग उन्हें घेर कर खड़े हो जाते । किसी तरह जब आगे चलते, तो लड़कोंका झुण्ड पीछेसे तालियाँ बजाता । खैर, किसी तरह कुमार चलते हुए उस गायनाचार्यके यहाँ पहुँचे जो अनेक राज-कुमारोंको शिक्षा दे रहा था । वहाँ पर जितने राज-कुमार उपस्थित थे, वे सभी श्रीपालको देखते ही हँस पड़े । कहने लगे—“आइये वामनजी ! कहिये, कहाँसे सवारी आ रही है ? कहाँ जाइयेगा ? आज किसका घर पवित्र करेंगे ?

श्रीपालने कहा—“भाइयो ! मैं बहुत दूरसे आ रहा हूँ । जिस कामके लिये आप लोग यहाँ कष्ट उठा रहे हैं, उसी कामके लिये मैं भी आया हूँ । आप लोग अभी मुझे देख कर हँस रहे हैं, किन्तु ईश्वरने चाहा, तो मैं थोड़े ही दिनोंमें आप लोगोंसे आगे बढ़ कर राज-सम्मान प्राप्त करूँगा ।”

श्रीपाल कुमारकी यह बातें सुन, वे सब लोग और भी उनकी दिल्लगी करने लगे । कहने लगे—“सच है, वामन महाराज ! राज-कुमारी तुम्हें न पसन्द करेगी तो भला और किसे करेगी ! आइये, शौकसे वीणा बजाना सीखिये ।”

इसी तरह लोगोंकी हँसी दिल्लगी और ताने सुनते हुए श्रीपाल गायनाचार्यके निकट पहुँचे । उसके पास पहुँचते ही उन्होंने एक बहु-मूल्य खड्ग उसे अर्पण किया । रुपयेमें बड़ी शक्ति होती है । वह सब विघ्न-बाधाओंको दूर कर देता है । खड्ग देखते ही गायनाचार्यका चेहरा मारे खुशीके खिल उठा । उसने श्रीपालको अपने पास बैठा कर उन्हें एक वीणा दी । स्वर तथा नाद आदिके स्थान बताकर बजानेको कहा । श्रीपालको वीणा बजानेका अभ्यास तो था ही नहीं, अतः उसे हाथमें लेते ही उसके तार टूट गये । यह देख कर गायनाचार्यकी समस्त शिष्य-मण्डली ठठाकर हँस पड़ी । सभी

कहने लगे—“वाह ! एक ही हाथमें वीणाकी सफाई ! बजानेवाला हो तो ऐसा ही हो !”

श्रीपालने इन दिल्लगियोंकी कोई परवाह न की । उन्होंने अपना अभ्यास जारी रक्खा । किन्तु यह केवल दिखौआ अभ्यास था । वास्तवमें श्रीपालको कुछ भी सीखना न था । सिद्धचक्रके प्रतापसे उन्हें बिना सीखे ही इस कलामें पारदर्शिता प्राप्त हो चुकी थी । किन्तु उन्होंने किसीसे भी यह भेद बताना उचित न समझा ।

कुछही दिनोंके बाद, राज-कुमारी एवं उससे पाणि-ग्रहण करनेके इच्छुक लोगोंकी, वीणा-वादन-कलाकी परीक्षाके निमित्त एक विराट सभाका आयोजन किया गया । इस कलाके कई विद्वान परिदत्त मध्यस्थ बनाये गये । राज-कुमारी सरस्वतिकी भांति हाथमें वीणा और पुस्तक लेकर सभामें उपस्थित हुई । अन्यान्य लोगोंके साथ जब श्रीपाल भी वहां पहुंचे, तो

उनका विरूप रूप देखकर दरवाने उन्हें अन्दर जानेसे रोका । तुरंत ही कुमारने उसे एक रत्न-भूषण इनाम देकर राजी कर लिया और सभा-भवनमें पहुँच गये ।

सभा-भवनमें जाते ही श्रीपालने एक कौतुक किया । दूसरोंकी दृष्टिमें विरूप होते हुए भी उन्होंने राज-कुमारीको अपना प्रकृत रूप दिखा दिया । उनका वह देव-कुमारसा रूप-सौन्दर्य देख कर राज-कुमारी मोहित हो गयी । वह मन-ही-मन ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी कि—
“हे नाथ ! इसी पुरुषको मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेकी शक्ति दीजिये, जिससे इसाके साथ मेरा विवाह हो और मेरा जन्म सार्थक हो । यदि इसने मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न की तो मैं किसी अयोग्य पुरुषके साथ विवाह करनेकी अपेक्षा आजन्म कुमारी ही रहना अधिक पसन्द करूंगी !”

जिस समय सब लोग सभामें आये उस समय सभापतिने राज-कुमारों एवं अन्य लोगों-

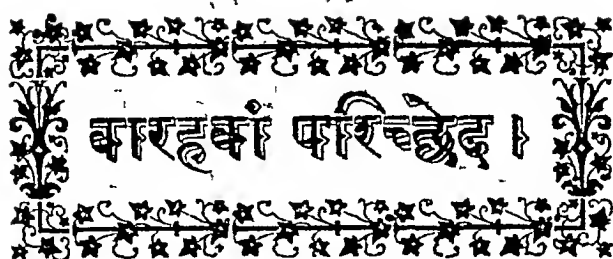
को अपना-अपना कला-कौशल दिखानेकी आज्ञा दी। सभी पुरुषोंके, अपनी-अपनी कला प्रदर्शित करनेके बाद, राज-कुमारीने भी अपना कौशल दिखाया। मध्यस्थ पण्डितोंने कहा—“धन्य है, राज-कुमारीको! यहाँ जितने राज-कुमार उपस्थित हैं, उनके और राज-कुमारीके कला-कौशलमें जमीन आसमानका अन्तर है। किसीको भी राज-कुमारीसे श्रेष्ठ नहीं ठहराया जा सकता।”

पण्डितोंका यह निर्णय सुनकर, राज-कुमारों का चेहरा पीला पड़ गया। वे ऐसे निस्तेज हो गये, जैसे सूर्यके सम्मुख तारा और चन्द्र निस्तेज हो जाते हैं। यह देखकर कुमार श्रीपाल आगे बढ़े। राज-कुमारीने उनके हाथमें एक वीणा दी। वीणा देखते ही कुमारने उसके गुण दोष समझ लिये। उन्होंने कहा—“यह वीणा ठीक नहीं है। इसकी तुम्बड़ीमें दोष रह गया है और इसका यह दण्ड भी जला हुआ है।

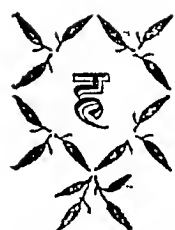
कुमारकी यह बातें सुन, राज-कुमारी और पण्डितोंको परमानन्द हुआ । उसी समय उनके हाथमें दूसरी वीणा दी गयी । कुमारने भी अपना कौशल दिखाना आरम्भ किया । उनके वीणा-वादनमें ऐसी मोहिनी, ऐसा माधुर्य और ऐसा जादू था, कि सब सुननेवाले निद्राभिभूत हो गये । इस समय कुमारको एक परिहास करनेकी सूझी । उन्होंने सब लोगोंके वस्त्राभूषण उतार कर सभा-मण्डपमें उनका ढेर लगा दिया ; लेकिन लोगोंको होश न हुआ । कुछ समयके बाद जब वे लोग सचेत हुए, तब अपनी यह अवस्था देखकर विस्मय पूर्वक बड़ेही लज्जित हुए । अब राज-कुमारीकी प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी । उसने कुमारके गलेमें वरं-माला पहना दी । उसे कुमारका प्रकृत रूप दिखाई देता था, इसलिये वह उनपर तन-मनसे मुग्ध हो रही थी, किन्तु दूसरे लोगोंको वह रूप न दिखाई देता था, इसलिये राज-कुमारीको ऐसे

विरूप पतिकी प्राप्ति देखकर वे दुःखित होने लगे । अब कुमारने अपना प्रकृत रूप धारण कर लिया । उनका वह रूप देखते ही चारों ओरसे धन्य धन्यकी आवाज आने लगी । राज-कुमारी और श्रीपालकी इस अनुपम जोड़ीकी लोग मुक्त करणसे प्रशंसा करने लगे । अनन्तर राजाने बड़े समारोहके साथ दोनोंको विवाह-सूत्रमें आवद्ध कर दिया । अब श्रीपाल अपनी इस नूतन वधूके साथ वहाँ रहने और आनन्द करने लगे ।





सप्तम-पूर्ति.



म यह पहलेही कह चुके हैं कि श्रीपाल कुमार नयी नयी बातें सुननेके लिये सदा उत्सुक रहते थे । एक दिन किसी यात्रीने आकर उनसे कहा—“कुमार ! यदि आप सुनें तो एक आश्चर्यजनक बात आपको सुनाऊँ ।”

श्रीपालने कहा—“बड़ी खुशीसे कहिये, मैं सुननेको तैयार हूँ ।”

यात्रीने कहा—“यहांसे तीन सौ योजनकी दूरीपर कञ्चनपुर नामक एक नगर है । वहाँ बज्रसेन नामक राजा राज करता है । उसकी पटरानीका नाम कञ्चनमाला है । उसने चार कुमार और एक कुमारीको जन्म दिया है । कुमारीका नाम त्रैलोक्यसुन्दरी है । वह बड़ी ही

रूपवती है । इस समय उसकी अवस्था विवाह करनेके योग्य हो गयी है, अतः राजाने उसके स्वयंवरके लिये एक विशाल मण्डप बनवाया है । उस मण्डपके स्तम्भोंपर मणि और काश्चन से बनी हुई पुतलियाँ बैठाई गयी हैं । अभ्यागतोंके स्वागतार्थ बहुत ही उत्तम प्रबन्ध किया गया है । स्वयंवरके लिये आषाढ़ शुक्ला पञ्चमी का दिन निर्धारित किया जा चुका है । यह समारोह आप जैसे राज-कुमारके लिये अवश्य ही देखने योग्य था । किन्तु अब समय नहीं रहा । क्योंकि आषाढ़ शुक्ला पञ्चमी तो कल ही है ।”

यात्रीकी यह बातें सुन, श्रीपालको कश्चन-पुर जानेकी पूर्ण इच्छा हो गई । उन्होंने पूर्ववत् अपना रूप बदल लिया । तदनन्तर कश्चनपुरका ध्यान करते ही वे, देव-प्रदत्त हारके प्रभावसे दूसरे दिन प्रातःकाल वहाँ पहुँच गये ।

शहरकी शोभा देखते हुए श्रीपाल कुमार

स्वयंवर-मण्डपके पास पहुँचे । दरवाने उनका विरूप देख कर उन्हें भीतरमें प्रवेश करनेसे रोका । किन्तु कुमारने उसे एक आभूषण देकर उसकी सम्मति प्राप्त कर ली । वे मण्डपमें प्रवेश कर मणिकी पुतलीके पास जा बैठे । वहाँ अनेक राज-कुमार और राजा-महाराजा बैठे हुए थे । वे सब श्रीपालको देखकर उनका उपहास करने लगे । किसीने पूछा—“महाराज ! कहिये, आप यहाँ क्यों आये हैं ?” श्रीपालने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—“जिस कामके लिये आप आये हैं, उसी कामके लिये मैं भी आया हूँ ।” कुमार का यह उत्तर सुन, लोग ठठाकर हँस पड़े । कहने लगे—“ठीक है, कुमारी, अवश्य, आपको ही पसन्द करेगी । क्योंकि उसे आप जैसा रूपवान और गुणवान दूसरा वर और कहाँ मिलेगा ?”

जिस समय इस प्रकार हँसी-दिल्लगी हो रही थी, उसी समय राज-कुमारी भी वहाँ आ

पहुँची । उसके आते ही सभा-मण्डप उसके अलौकिक तेजके कारण आलोकित हो उठा । एक बार मानो बिजली चमक गयी ।

राज-कुमारी अपने कण्ठमें सफेद मोतियोंकी मनोहर माला पहने, हाथमें वर-माला लिये हुए, गजकीसी मदमाती चालसे सभा-मण्डपके मध्यभागमें पहुँची । वहीं श्रीपाल बैठे हुए थे । उन्होंने कुमारीको अपना प्रकृत रूप दिखा दिया । उनका वह अलौकिक रूप देखते ही वह उनपर मुग्ध हो गयी । किन्तु उनका यह रूप केवल कुमारी ही देख सकती थी । दूसरे लोग तो उन्हें कुरूप ही समझ रहे थे । श्रीपालने राज-कुमारीके स्नेहकी परीक्षा करनेके लिये उसे बीच-बीचमें अपना कुरूप भी दिखाने लगे । इससे कुमारी बड़े असमञ्जसमें पड़ गयी । वह निश्चय न कर सकती थी कि इन दोमेंसे कुमार-का प्रकृत रूप कौन है ? फिर भी वह उन पर तन-मनसे अनुरक्त हो रही थी ।

प्रथानुसार राज-कुमारीकी सखियाँ उसके आगे चलती हुई, भिन्न-भिन्न राजाओंको कीर्तिका वर्णन कर, उसे उनका परिचय देने लगीं । जिस समय जिस राजाकी कीर्तिका वर्णन किया जाता, उस समय उस राजाका मुख-मण्डल प्रदीप्त हो उठता । किन्तु राज-कुमारी किसीमें देशका, किसीमें उम्रका, किसीमें रूपका और किसीमें शीलस्वभावका दोष बता कर, उसे वरणके लिये अयोध्य ठहराती । कुमारीके इस व्यवहारसे उन राजाओंपर मानों घड़ों पानी पड़ जाता था ।

इस प्रकार अनेक राजा महाराजाओंको नापसन्द कर, राज-कुमारी श्रीपालके समीप पहुंची । वहाँपर वह ऐसे खंडो हो गयी, जैसे कामदेवके समीप रति खड़ी हो । संसारमें मीठे पदार्थोंकी कमी नहीं है । रुचि और पसन्दगीकी बात है । जिसकी तबियत जिसपर जम जाती है, वही उसे सुन्दर, श्रेष्ठ और सर्वगुण-

सम्पन्न मालूम होता है । राज-कुमारी पहले-ही से श्रीपाल पर मुग्ध हो रही थी, इस लिये दूसरों पर अब उसकी तबियत ही न जमती थी । इतनेमें मणिमालाके अधिष्ठायाक देवताने स्तंभमें लगी हुई एक पुतलीमें प्रवेश करके कहा—“हे राज-कुमारी ! यदि तू वास्तवमें चतुर और गुण-ग्राहक है, तो इस वामनको पसन्द कर !” यह दैवी-वाणी सुनते ही राज-कन्याने उसी समय श्रीपालके गलेमें वर-माला पहना दी ।

श्रीपालने इस समय अपना रूप और भी विरूप बना लिया । उन्हें देख कर अनेक राजाओंको बड़ा क्रोध आया । उनका हृदय प्रबल ईर्ष्याग्निसे जल उठा । वे कहने लगे—“राज-कन्या इस वामन पर मुग्ध हो, तो भले ही इससे विवाह कर ले । किन्तु हमलोग अपने जीते जी यह अनर्थ न होने देंगे । वे लोग श्रीपालको ललकार कर कहने लगे—“हे वामन ! यह सुन्दरी तेरे योग्य नहीं है, इस लिये तू अपने मनसे ही

वर-माला त्याग दे । अन्यथा हम लोग तेरा शिर काट डालेंगे ।”

ऐसी बन्दर-घुड़कियोंसे श्रीपाल कब डरने-वाले थे ! उसी समय उन्होंने निर्भयता पूर्वक उत्तर दिया—“हे मुखौ ! राज-कन्याने तुम्हारे साथ विवाह न किया, तो इसमें मेरा क्या दोष ? मुझ पर क्यों नाराज होते हो ? विधाता पर क्यों नहीं होते ? अब तुम्हें यह भी सोचना चाहिये, कि राज-कन्या पर-स्त्री हो चुकी है । उसकी अभिलाषा करना—पर स्त्रीकी अभिलाषा करना है । अब तुम्हें इस पापके कारण मेरे खड्ग रूपी तीर्थमें पवित्र होना पड़ेगा ।”

इतना कहते ही श्रीपाल कुमारने म्यानसे अपनी तलवार खींच ली और दो चार ऐसे हाथ दिखाये, कि उनके विरोधियोंको भागना कठिन हो पड़ा । श्रीपालका यह पराक्रम देख, देवता भी प्रसन्न हो उठे । उस समय उन्होंने आकाशसे पुष्प-वृष्टि की । इससे राजा वज्रसेन

को सीमातीत आनन्द हुआ । उन्होंने श्रीपालसे कहा—“हे कुमार ! जैसे आपने अपना पराक्रम दिखाया है, वैसे ही अब अपना रूप भी दिखाइये । अब अधिक समय हमें भ्रममें न रखिये ।” राजाकी यह बात सुन कुमारने अपना प्रकृत रूप प्रकट किया । श्रीपाल कुमारका अद्भुत रूप देखकर राजा और उनके परिजन तथा पुरजनोंका बहुत ही आनन्द हुआ । उसी दिन राजाने बड़े समारोहसे उनके साथ राज-कन्याका विवाह करा दिया । और कुमारके रहनेके लिए एक विशाल महल भी खाली करा दिया । अब श्रीपाल अपनी नव-विवाहिता रानोके साथ वहीं आनन्द-पूर्वक रहने लगे ।

एक दिन श्रीपाल कुमार राज-सभामें बैठे हुए थे । उसी समय वहाँ कोई प्रवासी मनुष्य जा पहुंचा । उसने इधर-उधरकी बातें करते हुए कुमारको बतलाया कि यहाँसे कुछ दूर दलपत्तन नामक एक नगर है । वहाँ धरापाल

नामक राजा राज करता है । उसके सब मिला कर ८४ रानियाँ हैं । उनमें गुणमाला नामक रानी सबसे बड़ी है । उसने पाँच पुत्र और एक पुत्रीको जन्म दिया है । उस पुत्रीका नाम शृङ्गारसुन्दरी है । रूप और गुणमें उसकी कोई समता नहीं कर सकता । जैसा अलौकिक उसका रूप है, वैसे ही अलौकिक उसके गुण हैं । परिणता, विचक्षणा, प्रगुणा, निपुणा और दक्षा नामक उसके पाँच सखियाँ हैं । राज-कुमारी और उसकी इन पाँचों सखियोंको जैन धर्मके शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञान है ।

एक दिन राज-कन्याने अपनी सखियोंसे कहा कि—“हम लोगोंको परीक्षा करनेके बाद किसी विद्वान और जैन धर्मके मर्मज्ञके साथ ही विवाह करना होगा; क्योंकि मूर्ख और विद्वानका साथ पड़ जानेसे जीवन ही नष्ट हो जाता है ।”

परिणता नामक सखीने कहा—“कुमारी !

तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है । हम लोगों-
 को परीक्षाका कोई उपाय अभीसे सोच रखना
 चाहिये । मैं समझती हूँ कि हम लोगोंको
 एक-एक समस्या तैयार कर लेनी चाहिये और
 यह घोषित कर देना चाहिये, कि जो हमारी
 समस्याकी सन्तोषजनक पूर्ति कर देगा, वही
 हमारे तन-मनका अधिकारी अर्थात् हमारा पति
 होगा । जिस तरह एक दाना टटोलनेसे समूचे
 पात्रके अन्नकी परीक्षा हो जाती है, उसी तरह
 हमारी समस्याओंसे पात्र, कुपात्र और उसके
 गुण-दोषका पता चल जायगा ।”

‘पण्डिताकी यह बात सब स्त्रियोंको पसन्द
 आ गयी, इस लिये उन्होंने एक-एक समस्या
 बना रखी है । अबतक हजारों आदमी जा
 चुके ; किन्तु कोई भी उनकी समस्याओंका
 सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सका ।”

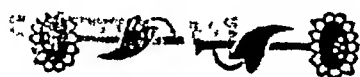
श्रीपालको तो यह बात सुननेही भरकी देर
 थी । ज्यों ही राज-सभासे वे अपने निवास-

स्थानको लौटे, त्योंही उन्होंने उस मणिमांलाके अधिष्ठायक देवताका स्मरण किया । उसी समय उसने कुमारको उनके आदेशानुसार दलपत्तन पहुंचा दिया । वहां पहुंचते ही वह राज-कुमारीके पास पहुंचे और उसे अपनी समस्या बतलानेको कहा । कुमारीने अपनी सखियोंकी ओर संकेत किया । वे उसके संकेतको समझ गयीं । उसी समय उन्होंने राज-कुमारीकी और साथ ही अपनी भी सारी समस्याएँ उनको कह सुनायीं ।

श्रीपालने सोचा कि केवल समस्या-पूर्ति करनेमें ही कोई मजा नहीं है । समस्या-पूर्ति करनेके साथ साथ कोई चमत्कार भी अवश्य दिखाना चाहिये । उसी समय उनकी दृष्टि पास ही रखे हुए एक पुतले पर जा पड़ी । श्रीपाल कुमारने सिद्धचक्रका ध्यान कर त्योंही उस पुतलेके शिरपर हाथ रखा, त्योंही वह जड़ पुतला चैतन्य हो उठा । उसने देखते-ही-

देखते राज-कन्या एवं उसकी पांचों सखियोंकी समस्याओंकी यथोचित पूर्ति कर दी ।

पतलेका यह अद्भुत कार्य और श्रीपालकी अलौकिक शक्ति देख कर सब लोग आश्चर्यसे स्तम्भित हो गये । उसी समय राज-कुमारी एवं उसकी सखियोंने अपना तन-मन श्रीपालको समर्पित कर दिया । राजाने भी उसी समय यह हर्ष-संवाद सुना । अपनी कन्याको योग्य पति मिलनेके कारण वह बड़ाही प्रसन्न हुआ । अनन्तर कुछ समयके बाद उसने श्रीपालके साथ बड़ी धूम-धामसे राज-कन्या और उसकी पांचों सखियोंका विवाह कर दिया । इस बार श्रीपाल कुमार एकसे एक बढ़कर, विदुषी और रूपवती छह स्त्रियोंको पाकर, मन-ही-मन अपने भाग्यकी सराहना करने लगे ।





राधा-वेधमें सफलता ।



स समय शृङ्गारसुन्दरी और उसकी पाँच सखियोंके साथ श्रीपाल कुमारका समस्या-संवाद हो रहा था, उस समय वहाँ किसी देशसे आया हुआ अंगभट्ट नामक एक ब्राह्मण भी उस्थित था । वह श्रीपालके चमत्कारको देखकर मन-ही-मन उनपर प्रसन्न हो रहा था । एक दिन समय पा कर वही अंगभट्ट ब्राह्मण श्रीपालके पास आया । आशीर्वाद देनेके पश्चात् उसने उनसे कहा —“हे कुमार ! मैं एक बात कहता हूँ, उसे सुनिये । यहाँसे कुछ दूरीपर कोल्लिंगपुर नामक एक शहर है । वहाँ पुरन्दर नामक राजा राज करता है । उसके विजया नामक एक रानी

है । उस रानीने सात पुत्र और एक पुत्रीको जन्म दिया है । पुत्रीका नाम जयसुन्दरी रखा गया है । वह इतनी सुन्दर है कि रम्भा आदि अप्सराओंसे भी उसकी तुलना नहीं की जा सकती । एक तो सौन्दर्य, दूसरे यौवन—दोनोंके कारण उसमें इस समय सोना और सुगन्ध-को कहावत चरितार्थ हो रही है । एक दिन राजाने राज-कुमारीके शिचा-गुरुसे पूछा—
“महाराज ! राज-कुमारीके विवाहके सम्बन्धमें आपकी क्या सम्पत्ति है ?”

शिचा-गुरुने कहा—“राजन् ! जिस समय मैं राज-कुमारीको कलाओंकी शिचा दे रहा था, उस समय एक दिन उसने मुझसे प्रश्न किया कि राधावेध किसे कहते हैं ? तब मैंने उसे राधावेधका वर्णन करते हुए बतलाया, कि एक स्तम्भ पर आठ चक्र लगाये जाते हैं । इनमेंसे चार चक्र उत्तरकी ओर और चार चक्र दक्षिणकी ओर घूमते हैं । दोनों ओरके चक्रों-

के उपर एक पुतली बैठायी जाती है । उस पुतलीको 'राधा' कहते हैं । जब चक्र घूमते हैं, तब उनके किनारे पर जो दाँत बने रहते हैं, उनमेंसे वह पुतली दिखायी देती है । स्तम्भके नीचे तेलसे भारा हुआ एक कड़ाह रख दिया जाता है । उसमें चक्र और पुतलीका प्रतिबिम्ब पड़ता है । वेध करनेवालेको कड़ाहमें वह प्रतिबिम्ब देखते हुए ऊपरकी ओर बाण छोड़ना होता है । अगर बाण चक्रके दाँतोंमें बिना लगे ही ऊपर निकल जाता है और पुतलीकी बाँयों आँख छेद देता है, तो वह वेध करनेवाला विजयी समझा जाता है, किन्तु यह बहुत ही कठिन कार्य है । सब कोई इसे नहीं कर सकते । किसी विरले ही मनुष्यको यह सफलता मिलती है । राज-कुमारीने मेरी यह बात सुनकर उसी दिन प्रतिज्ञा की है कि राधावेधमें सफलता प्राप्त करेगा, उसीको मैं अपना पति बनाऊँगी । इस लिये हे राजन् ! आप एक बड़ा मण्डप बनवा

कर राधावेधका आयोजन कीजिये और उसमें भाग लेनेके लिये देश-देशान्तरके राजा और राज-कुमारोंको निमन्त्रण भेजिये । इस कठिन परीक्षामें जो उत्तीर्ण होगा, वही राज-कन्याके पाणि-ग्रहणका अधिकारी होगा ।”

अङ्गभट्टने श्रीपालको यह समाचार बतलाते हुए, अन्तमें उसने कहा—“हे कुमार ! शिचा-गुरुकी यह बात सुन, राजाने राधावेधका आयोजन किया है । अबतक अनेक राज-कुमार आ चुके, किन्तु किसीको भी इसमें सफलता नहीं मिली । आपकी विद्या-बुद्धि मुझे कुछ विचित्र ही दिखायी देती है । अतः मैं समझता हूँ, कि यदि आप वहाँ पहुँच जायें, तो अवश्य ही आपको उसमें सफलता मिलेगी ।”

अङ्गभट्टसे यह वृत्तान्त सुन लेनेके बाद श्रीपालने उसे दो कुण्डल उपहार दे, विदा किया । रातको बहुत कुछ सोच-विचार करनेके बाद, उन्होंने वहाँ जाना स्थिर किया । हारके

प्रभावसे सुबह होते ही वह कोल्लागपुर पहुँच गये ।

राधावेध करना उनके लिये कोई कठिन कार्य न था । उन्होंने राजा और सभा-जनोंके सम्मुख देखते-ही-देखते पुतलीकी बायीं आँख छेद डाली । उसी समय राजाने उन्हें विजयी घोषित किया । राज-कुमारीने भी उसी क्षण उनके गलेमें वर-माला पहना दी । तदनन्तर राजाने शुभ मुहूर्तमें बड़े समारोहसे दोनोंका विवाह करा दिया । अब श्रीपाल कुमार राजाके दिये हुए निवास-स्थानमें रह कर, उनका आतिथ्य ग्रहण करते हुए, अपनी नयी दुलहिन के साथ सुखोपभोग करने लगे ।

पाठकोंको यह स्मरण होगा, कि श्रीपाल कुमार थाणापुरीमें अपने मामाको बिना किसी प्रकारकी सूचना दियेही वे वहाँसे चले आये थे । इससे वहाँ पहले तो बड़ा हाहाकार मंच गया; किन्तु पश्चात् अपने पराक्रमोंके कारण वे छिपे न

रह सके । अपना चातुर्य और बल दिखा कर जिस समय वे नया विवाह करते, उस समय उनके मामाको उनका पता चल जाता था । अन्तमें उन्होंने उन्हें बुला लानेके लिये कोह्लाग-पुरकी ओर कई दूत रवाना किये । वे यथासमय श्रीपालसे आ मिले, और उन्हें उनके मामाका सन्देश कह सुनाया ।

श्रीपाल कुमार भी अब अपने देशकी ओर लौटना चाहते थे, इसलिये उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानोंमें रखी हुई, अपनी रानियोंको बुला भेजा । कुछही दिनोंमें सब रानियाँ आ पहुँचीं । सभीके साथ अङ्ग-रक्षकके रूपमें कुछ-न-कुछ सैनिक भी आये थे । अनन्तर श्रीपाल कुमार पुरन्दर राजासे विदा ग्रहण कर, उन सबोंके साथ, थानापुरीकी ओर रवाना हुए और कुछही दिनोंमें वे वहाँ जा पहुँचे । उन्हें देख, वसुपाल राजाको बड़ा ही आनन्द हुआ । बड़ी धूम-धामसे वे श्रीपालको नगरमें ले गये । कुछ दिन तक श्रीपाल वहाँ

बड़े आनन्दसे रहे । अनन्तर अपुत्र होनेके कारण वसुपाल राजाने श्रीपालको अपनी पुत्री पर बैठा दिया । श्रीपाल अब तक राजा होनेपर भी राजा न थे, किन्तु अब वे यथानियम सिंहासनारूढ़ हो, राजाकी भाँति प्रजा-पालन करने लगे ।

श्रीपाल कुमारको अपनी मातासे अलग हुए बहुत दिन हो चुके थे । उनका हृदय अब उनसे मिलनेके लिये अत्यन्त व्याकुल हो रहा था । अतएव उन्होंने कुछ दिनोंके बाद यहाँसे भी सदल-बल प्रस्थान किया । मार्गमें अनेक राजाओंसे अधीनता स्वीकार कराते और भेंट लेते हुए, वे सोपारकपुर पहुँचे । वहाँका राजा उनसे मिलने न आया । इसलिये श्रीपालने अपने मंत्रियोंसे पूछा, कि अन्यान्य राजाओंकी भाँति यह राजा हम लोगोंसे मिलने क्यों न आया ? मंत्रियोंने कहा—“राजन ! यहाँका राजा बहुत ही भला है ; किन्तु इस समय वह एक बड़े भारी

संकटमें पड़ा हुआ है, इसी लिये यहाँ नहीं आ सका ।”

श्रीपालने पूछा—“ऐसा कौन सङ्कट है, जो इस समय उसे इस प्रकार व्यग्र बना रहा है ?”

मन्त्रियोंने कहा—“महाराज ! यहाँके राजा-का नाम महसेन और रानीका नाम तारासुन्दरी है । इनके तिलकसुन्दरी नामक एक रूपवती पुत्री थी । उसे देखते ही ऐसा मालूम होता था मानों उसे विधाताने नहीं, किन्तु स्वयं कामदेव ने ही अपने कर-कमलोंसे बनाया है । उसी पुत्रीको सर्पने काट खाया है । राजाने तंत्र-मंत्र और औषधोपचार करनेमें कोई कसर नहीं रखी ; किन्तु राज-कुमारीको इससे कुछ भी लाभ न पहुँच सका । इसीसे वह इस समय बड़े ही चिन्तित और दुःखी हैं ।”

श्रीपालने कहा—“अच्छा, चलो, मुझे उस कुमारीके पास ले चलो । संभव है, कि मैं उसका विष उतार सकूँ ।”



जलके छीटे पड़ते ही राज-कुमारी अलसाती हुई उठ
वैती ।

(पृष्ठ १८६)

इतना कह, श्रीपालने उसी समय अपने मन्त्रियोंके साथ घोड़ेपर सवार हो, नगरमें प्रवेश किया । उस समय राज-कुमारीका अग्नि-संस्कार करनेके लिये सब लोग श्मशान पहुंच चुके थे । श्रीपाल कुमार भी झटपट घोड़ेको एड़ी लगाते हुए वहाँ जा पहुंचे । चिता तैयार हो चुकी थी । केवल अग्नि देने-भरकी देर थी । मन्त्रियोंने तुरन्त वहाँ पहुंच कर राजासे कहा—“ठहरिये, अभी आग मत दीजिये । हमारे कुमार साहब शायद इसे जिला दें ।”

सब लोग आश्चर्य-पूर्वक श्रीपाल और उनके मन्त्रियोंकी ओर देखने लगे । श्रीपाल कुमारके आदेशानुसार राज-कुमारीको चितासे उतार कर भूमिपर सुला दी गयी । तदनन्तर श्रीपालने उस हारकी धोकर वही जल उस पर छिड़क दिया । जलके छींटे पड़ते ही राज-कुमारी अलसाती हुई उठ बैठी । यह देखकर लोगोंको बहुत ही आनन्द हुआ । वे बारबार हर्षनाद

करने लगे । किन्तु राज-कुमारीको यह सब देख कर बड़ाही आश्चर्य हो रहा था । उसकी समझ में यह बात न आती थी, कि श्मशान भूमिमें इतने लोगोंके बीचमें वह जमीन पर क्यों सो रही थी । उसने उत्कण्ठा-पूर्वक अपने पिताकी ओर देखा । पिताने कहा—“बेटी ! आज यदि यह परम प्रतापी पुरुष यहाँ न आ पहुँचे होते, तो अब तक न जाने क्या हो गया होता ?”

यह कह, राजाने अपनी पुत्रीको सर्प-दंश से लेकर श्मशान-यात्रा तकका सारा हाल कह सुनाया । अन्तमें वे बोले—“बेटी ! तेरा प्राण इन्हीं महापुरुषने बचाया है । इन्हींकी दयासे हम तुझे इस समय जीवित देख रहे हैं । अब मेरी आन्तरिक अभिलाषा यह हो रही है, कि इनके इस उपकारके बदलेमें तेरा विवाह-सम्बन्ध भी इन्हींसे कर दूँ ।”

पिताकी यह बात सुन राज-कुमारीने स्नेह-भरी दृष्टिसे श्रीपालकी ओर देखा । देखते ही

वह उनपर अनुरक्त हो गयी । लज्जाके कारण उसके दोनों कपोल लाल हो गये । राजाने तुरन्तही उसका मनोभाव ताड़ लिया । श्रीपालके चेहरेपर भी प्रेम-भाव झलक रहा था, इस लिये राजाने अब विलम्ब करना उचित न समझा । उन्होंने उसी दिन बड़े समारोहसे श्रीपालके हाथोंमें राज-कुमारीको हाथ सौंप दिया ।

श्रीपाल कुमारने अपनी आठों स्त्रियोंके साथ कुछ दिन वहींपर व्यतीत किये । अनन्तर जिस तरह समकित वंश जीव आठ दृष्टियोंसे युक्त होनेपर भी विरतिको चाहता है, आठ प्रवचन माता युक्त मुनि जिस तरह समताको चाहते हैं और आठ तरहकी बुद्धिसे युक्त मनुष्य जिस प्रकार सिद्धिको चाहता है, उसी प्रकार श्रीपाल कुमार आठ रानियोंसे युक्त होनेपर भी अपनी प्रथम पत्नी मैनासुन्दरीको चाहने लगे । उससे मिलने और माताको प्रणाम करनेके लिये वे लालायित हो रहे थे । इसी लिये और अधिक

दिन वहाँ न रहकर उन्होंने स्वदेशको ओर प्रस्थान किया।

रास्तेमें अनेक राजाओंसे अधीनता स्वीकार कराते और अनेक राजाओंसे भेंट-नजर लेते हुए श्रीपाल कुमार एक चक्रवर्तीकी भाँति अग्रसर हो रहे थे। उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। अतः वे जिधर ही जा निकलते उधर ही धूम मच जाती। क्रमशः महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, मेवाड़, लाट, भोट आदि अनेक देशके राजाओंको अधीन करते हुए वह मालव देशमें जा पहुंचे।

मालवदेशके राजा प्रजापालने जब यह समाचार सुना, कि कोई राजा युद्ध करने आ रहा है, तब वह भी उज्जयिनी गढ़में युद्धकी तैयारियाँ करने लगा। अन्न, वस्त्र, जल आदि आवश्यक पदार्थ अधिक-से-अधिक परिमाणमें एकत्रित किये गये और नगरके बाहर रहनेवाले लोग भी किलेके अन्दर सुरक्षित स्थानमें आ

गले । चारों ओर ओतझूट्टा गया । सब लोग युद्धकी आशङ्कासे भयभीत हो रहे थे । इसी समय श्रीपाल कुमार सदल-बल उज्जयिनी आ पहुँचे । राजाको जब यह मालूम हुआ तो उसने तुरन्त किलेके फाटक बन्दकरा दिये । यह सुन श्रीपालने नगरके बाहरही अपना शिविर स्थापित कर चारों ओरसे उज्जयिनीको घेर लिया ।

श्रीपाल कुमारने नगरीको घेर तो लिया, किन्तु उनके हृदयमें उसे अधिकृत करनेकी इच्छा उतनी प्रबल न थी, जितनी अपनी माता और स्त्रीसे मिलनेकी थी । इस इच्छाको रोक रोखना उनके लिये अब बहुत ही कठिन हो पड़ा । इस लिये वे उसी रातको एक गुप्त-मार्गसे अपने निवास-स्थानमें जा पहुँचें । किन्तु किसीको बुलाने या घरमें प्रवेश करनेके पहले वे कुछ देर के लिये बाहर ही ठहर गये और घरके अन्दर जो बातचीत हो रही थी, उसे सुनने लगे ।



अपमानका बदला ।



स समय श्रीपाल कुमार अपने निवास स्थानमें पहुँचे, उस समय वहाँ दो स्त्रियाँ बात चीत कर रही थीं । उनमें एक स्त्री उनकी धर्म-पत्नी और दूसरी माता थी । दोनोंमें इस प्रकारकी बातें हो रही थीः—

माताने कहा—“बहू ! इस समय किसी शत्रु ने नगरीको चारों ओरसे घेर लिया है । समूचे शहरमें हाहाकार मचा हुआ है । सबको यही चिन्ता लगी हुई है, कि न जाने क्या होगा । खैर, मुझे इन सब बातोंकी फिक्र नहीं है । हम लोगों के पास थोड़ा बहुत जो सामान है, वह भी यदि चला जाय तो मुझे कोई परवाह नहीं । किन्तु मेरा



जवसे वह विदेश गया, तवसे हम लोगोको उसकी कोई खोज-खबर नहीं मिली । उसे देखनेके लिये मेरा जी छटपटा रहा है ।

(पृष्ठ १६५)

जीवन-धन, मेरी आँखोंका तारा, वह श्रीपाल जहाँ हो, वहाँ सुखी रहे। जबसे वह विदेश गया, तबसे हम लोगोंको उसकी कोई खोज-खबर नहीं मिली। उसे देखनेके लिये मेरा जी छटपटा रहा है। बिना उसको देखे, अब मुझे अपना जीवन भाररूप मालूम हो रहा है। न जाने अब मैं कौनसा सुख देखनेके लिये जी रही हूँ ?”

सासकी यह बात सुनकर श्रीपालकी स्त्री मैनासुन्दरीने कहा—“माताजी ! इस प्रकार आप दुःखी क्यों हो रही हैं ? सिद्धचक्रके प्रतापसे सब भला ही होगा। आपके पुत्र राजी-खुशी घर आयेंगे और शत्रुका यह भय भी दूर हो जायगा। मालूम होता है कि किसी बुरे ग्रहके कारण इस समय हम लोग संकट भोग रही हैं। आप नवपदका ध्यान कीजिये, जिससे अपने अनिष्ट दूर हों। नवपदके जपसे जलो-दर प्रभृति व्याधियाँ, सब तरहके उपद्रव, बन्धन और भय दूर हो जाते हैं। एवं इहलोक

और परलोकमें सृद्धि, सिद्धि तथा सुख-सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। मेरी धारणा है कि अब हमारे दुःखके दिन पूरे हो गये और सुखके दिन आनेमें अब अधिक देर नहीं है। माताजी ! आज सायंकालमें पूजाके समय मुझे जो अपूर्व भाव और अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति हुई है, वह अवर्णनीय है। अबतक मेरे मूनपर उसका प्रभाव बना हुआ है। मेरी रोमावली रह रह कर मानो पुलकित हो उठती है। आज मेरी बायीं आँख और बायाँ स्तन भी फड़क रहा है। इससे मेरा मन कह रहा है कि आज कोई शुभ घटना अवश्य घटित होनी चाहिये। संभव है कि आज ही मेरे पतिदेव आ जायें या हम लोगोंको उनका आनन्दप्रद समाचार ही मिले।”

माताने कहा—“बेटी ! ईश्वर करे तेरी बात सत्य प्रमाणित हो। मैंने अनेक बार देखा है कि तू जो कहती है, वही होता है। तेरी

जीभमें अमृत है । मुझे तेरी बातका पूर्ण विश्वास है ; क्योंकि तेरी बात सिद्ध पुरुषके वचनकी भाँति कभी व्यर्थ नहीं जाती ।”

माता और स्त्रीकी यह बातें सुनकर श्रीपालका हृदय पुलकित हो उठा, उनसे अब और अधिक समय तक चुप न रहा गया । वे तुरन्त ही अपनी माताको पुकार उठे । सुनते ही माताने कहा—“यह मेरे पुत्रकाही शब्द है । जिन-वचन कभी झूठे नहीं हो सकते ।” यह कहती हुई वह उठीं और बड़े प्रेमसे द्वार खोले । श्रीपालने माताको बड़े ही आदरसे प्रणाम किया । मैना-सुन्दरीने भी अपने पतिके चरण स्पर्श किये । उन्होंने उसे प्रेमकी दृष्टिसे देखकर निहाल कर दिया ।

साधारण बातचीतके बाद, श्रीपाल कुमार माताको कन्धे और पत्नीको हाथपर बैठाकर, हारके प्रभावसे, आकाश मार्गद्वारा अपने शिविर में आ पहुँचे । वहाँ उन्होंने अपनी माताको

सिंहासन पर बठाकर आप उनके सामने आ बैठे। उनकी आंठों नव-विवाहिता रानियोंने भी आकर माता और मैनासुन्दरीके चरण स्पर्श किये। माताने सबोंको शुभाशीश दी और मैना सुन्दरीने मधुर वचनों द्वारा सबका स्वागत किया। अनन्तर श्रीपालने माताको समस्त पूर्व वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया। अन्तमें उन्होंने कहा—“यह सब गुरुप्रदत्त नवपदके आराधनका ही प्रताप है। पुत्रकी यह बातें सुनकर माताको बहुत ही आनन्द हुआ। उनके जीवनमें इससे बढ़ कर आनन्दका अवसर शायद ही उपस्थित हुआ हो। अस्तु !

अब श्रीपालने मैनासुन्दरीसे कहा—“प्रिये ! मेरी बातोंसे तुम यह तो जान ही चुकी होगी कि, सिद्ध चक्रके प्रतापसे उज्जायिनीको हथिया लेना मेरे लिये कुछ भी कठिन नहीं है। तुम्हारे पिताने अभिमानवश जैन धर्मका अपमान किया था, न केवल धर्मका ही अपमान

किया था, बल्कि सच्ची बातें कहनेके कारण तुम्हारा जीवन भी दुःखमय बनानेमें उन्होंने कोई कसर न रखी थी। अब मैं तुम्हारे पिता-को उनकी यह भूल दिखा देना चाहता हूँ, कि उन्होंने क्रोधावेशमें आकर कैसा अनुचित कार्य किया था; किन्तु फिर भी कर्मकी रेख पर वे मेख न सार सके। अब तुम मुझे यह बतलाओ कि उन्हें किस रूपमें और किस प्रकार वहाँ उपस्थित होनेको बाध्य किया जाय ?”

मैनासुन्दरीने कहा—“नाथ ! आप खुद समझदार हैं। मैं आपको भला क्या बता सकती हूँ। फिर भी यदि आप मेरा अभिप्राय जनना ही चाहते हैं, तो मुझे कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है। मेरी समझमें, पिताजीका अभिमान दूर करना सबसे अधिक आवश्यक है। इसलिये उन्हें कन्धेपर कुल्हाड़ी रख कर नम्रतापूर्वक वहाँ उपस्थित होनेको कहना चाहिये। इससे उनका अभिमान दूर हो

जायगा, एवं इसके फल स्वरूप न केवल उनका ही कल्याण होगा, बल्कि दूसरोंको भी शिक्षा मिलेगी ।”

मैनासुन्दरीकी यह बात श्रीपालने सहर्ष स्वीकार कर ली । उसी समय उन्होंने एक दूत द्वारा मालवराजको यह सन्देश कहला भेजा । साथ ही यह भी कहला दिया, कि यदि उन्हें यह स्वीकार न हो तो युद्धकी तैयारी करें ।

यथा समय दूत मालवराजकी सेवामें उपस्थित हुआ और उन्हें श्रीपालका सन्देश कह सुनाया । दूतकी बात सुनते ही मालवपतिके शरीरमें मानो आग लग गयी ; किन्तु कोई उपाय न था । वे पहले ही सुन चुके थे, कि शत्रु बड़ा प्रबल है । फिर भी वे अपने मन्त्रियोंके साथ सलाह करने बैठे । मन्त्री चतुर थे, परिस्थितिको वे भली भाँति समझते थे । उन्होंने कहा—“महाराज ! क्रोध करनेका यह अवसर नहीं है । शत्रुता और मित्रता समान शक्ति-



अब वे कन्धे पर कुल्हाड़ी रख, पैरोसे चलते हुए
श्रीपालके शिविरमे आ पहुंचे । (पृष्ठ २०१)

वाले हीसे करना उचित है । इस समय हम लोगोंको सबल शत्रु से काम पड़ गया है । अतः अवस्थाके अनुसार काम न करनेसे निःसन्देह हमारी ही हार होगी । परमात्माने जिसे हम लोगोंसे श्रेष्ठ बनाया हो, उसके सम्मुख न-म्रता प्रकट करना ही हमारा कर्त्तव्य है । दूत की बात हम लोगोंको सहर्ष मान लेनी चाहिये । इसमें कुछ भी अनुचित या अपमान-जनक नहीं है ।”

मन्त्रियोंकी यह बात सुन, भालवपति राजा प्रजापालने दूतकी बात मान ली । अब वे कन्धे पर कुल्हाड़ी रख, पैरोंसे चलते हुए श्रीपालके शिविरमें आ पहुँचे । उन्हें आते देख, श्रीपालने आगे बढ़ कर उनकी अभ्यर्थना की । उनसे कुल्हाड़ीरखवा कर, उत्तम वस्त्राभूषण पहना कर उन्हें सभा-मण्डपमें ले गये । उसी समय वहाँ मैनासुन्दरी उपस्थित हुई । उसने प्रजापालको प्रणाम कर कहा—“पिताजी ! मेरी बातें याद

कीजिये । कर्म ही प्रधान है । उसके सामने हम सब लोग किसी हिसाबमें नहीं हैं । देखिये, कर्मयोगसे मुझे जो पति मिले थे, उन्होंने इस समय अपनी कैसी उन्नति की है ।

इतना कह, मैनासुन्दरीने राजा प्रजापालसे श्रीपालका परिचय कराया । इस बार उनकी ओर देखते ही प्रजापाल उन्हें पहचान गये । इससे उन्हें सीमातीत आनन्द हुआ । उन्होंने गहगह होकर कहा—“कुमार ! मैं आपको पहचान न सका । आपने भी गम्भीर और गुणवान होनेके कारण स्वयं अपना परिचय न दिया । आपकी यह सब सुख-सम्पत्ति और वीरता देखकर मुझे असीम आनन्द हो रहा है । धन्य है आपको !”

श्रीपालने कहा—“राजन् ! यह सब नव-पदका प्रताप है । इसीके प्रसादसे यह सब ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हुई है, मेरी वीरताके कारण नहीं ।”

प्रजापालने कहा—“बड़े लोग अपनी वीरता को कभी भूल कर भी महत्व नहीं देते। इसमें भी कोई सन्देह नहीं, कि इष्टदेव और गुरुकी कृपासे वाञ्छित फलकी प्राप्ति भी अवश्य होती है।”

दामाद और ससुर दोनोंमें इसी तरहकी की बातें होने लगीं। एक दूसरेकी बातोंसे वे बड़े ही आनन्दित होने लगे। इसी समय समूचे नगरमें यह बात विद्युत् वेगसे फैल गयी, कि उज्जयिनीको घेरा डालनेवाला कोई शत्रु नहीं; किन्तु प्रजापालके वही जमाता हैं, जिन्हें कोढ़ी समझ कर उन्होंने मैनासुन्दरीको क्याह दी थी। प्रजापालके महल और रनवासमें भी यह समाचार पहुँच गया। सुनते ही सौभाग्य-सुन्दरी और रूपसुन्दरी प्रभृति रानियाँ तथा अन्यान्य परिजन लोग भी श्रीपाल और मैनासुन्दरीको देखनेके लिये शिविरमें आ पहुँचे। सभी एक दूसरेसे आनन्द-पूर्वक मिले

जुले । किसीके हृदयमें किसी प्रकारका रोष या द्वेष दिखायी न देता था । चारों ओर आनन्दकी धारा बह रही थी । सब लोग उसी धारामें मग्न कर हृदयके कलुषित भावोंको जलाञ्जलि दे रहे थे ।

श्रीपाल कुमारने सब लोगोंको उपस्थित देख, उनके आनन्दमें वृद्धि करनेके लिये एक नाटक खेलनेकी आज्ञा दी । आज्ञा मिलते ही नाटककी सब चीजें ठीक कर दी गयीं । नाटकके खिलाड़ियोंका एक दल रंगमञ्च पर उतरनेके लिये तैयार हो गया ; किन्तु नाटकके पहले ही दृश्यमें जिस नटीका अभिनय था, वह बारंबार कहने पर भी अभिनयके लिये तैयार न हुई । उसने पहले कभी भी ऐसी मनोवृत्ति न दिखायी थी, इस लिये इस समय उसको आना-कानी करते देख, सबको बहुतही आश्चर्य हुआ । बड़ी देरतक समझाने-बुझानेपर अन्तमें वह खड़ी हुई और साधारण वेश पहन कर रंग-



कहँ, मालव कहँ शंखपुर, कहँ बब्वर कहँ नट्ट ।

नाच रही सुरसुन्दरी, विधि अस करत अकाज ॥

(पृष्ठ २०५)

मञ्च पर उपस्थित हुई । इस समय उसके चेहरे पर विषादकी घनघोर घटा छायी हुई थी; किन्तु किसीको इसका कारण विदित न था । उस नटीने रंग-मञ्चपर अभिनय आरम्भ करनेके पहले यह दोहा कहा :—

कहाँ मालव कहाँ शंखपुर, कहाँ बब्रर कहाँ नट ।

नाच रही सुरसुन्दरी; विधि अस करत अकाज ॥

नटीके मुंहसे यह दोहा सुनते ही राजा प्रजापाल विचारमें पड़ गये । वे सोचने लगे, कि “सुरसुन्दरी तो मेरी वही पुत्री है, जिसे मैंने शंखपुरके राज-कुमार अरिदमनसे व्याह दिया था । वह यहाँ कहाँ ? पर यह नटी क्या कह रही है ? इसके कथनसे तो यही सिद्ध होता है, कि यह सुरसुन्दरी ही है ।” यह विचार आते ही उन्होंने नजर उठा कर उस नटीकी ओर ध्यान-पूर्वक देखा । देखते ही उन्हें मानों काठ मार गया । उन्होंने देखा कि वास्तवमें वह नटी सुरसुन्दरी ही है । वह भी अपनेको

अब न रोक सकी । तुरन्त रंगमञ्चसे उतर कर अपनी माता सौभाग्यसुन्दरीके पास पहुंची और उसके गलेसे लिपट कर सिसक-सिसक कर रोने लगी । उसकी यह अवस्था देख, माताने उसे बहुत आश्वासन दिया । समझाने-बुझाने पर जब वह कुछ शान्त हुई, तब उसकी माताने कहा—“बेटी ! जो होना था सो हो गया । अब तू यह बता कि तेरी यह अवस्था कैसे हुई ?”

सुरसुन्दरीने अपनी राम कहानी माता-पिताको संचेपमें सुनाते हुए कहा—“आप लोगोंने बड़ी धूमधामसे मेरा ब्याह कर मुझे मेरे प्रतिके साथ यहाँसे बिदा किया । हमलोग सकुशल शंखपुर पहुंच गये ; किन्तु उस दिन नगर प्रवेशका मूहूर्त्त न मिलनेके कारण हम लोग नगरके बाहर ही एक बगीचेमें ठहर गये । हम लोगोंके साथ काफी आदमी थे ; किन्तु उनमेंसे अधिकांश निश्चिन्त हो, अपने-अपने स्वजन स्नेहियोंसे मिलने चले गये । हम लोगों

ने भी समझा, कि अब कोई खतरा नहीं है, इसलिये उनके जानेमें कोई बाधा न दी । किन्तु दुर्भाग्यवश मध्य रात्रिके समय डाकुओंने हमारे डेरेपर छापा मारा । आपके दामादजी तो प्राण लेकर न जाने कहाँ भाग गये और मैं डाकुओं-के हाथमें पड़ गयी । वे मुझे अपने साथ नेपाल ले गये । वहाँ उन्होंने मुझे बेच दिया । जिस मनुष्यने खरीदा, वह वहाँसे मुझे बब्बरकुल ले गया और वहाँ उसने एक बड़ी रकम लेकर मुझे वेश्याके हाथ बेच दिया । उस वेश्याने मुझे गाना-बजाना और नृत्य कला सिखाकर नटी बना दिया । वहाँके राजा महाकाल नाटकोंके बड़े ही शौकीन हैं । उन्हींके यहाँ नटी होकर रहनेके लिये मुझे बाध्य होना पड़ा । जब श्रीपाल कुमार वहाँ पहुंचे और इनके साथ राज-कुमारी मदनसेनाका व्याह हुआ, तब राजाने एक नाटक-मण्डली भी दहेजमें दी । मैं भी उसी मण्डलीमें थी ।

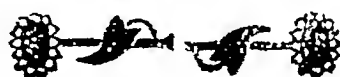
उसी समयसे मैं श्रीपाल कुमारके साथ रह कर नटीकी तरह जीवन व्यतीत कर रही हूँ । आज आप लोगोंको देखकर मुझसे रहा न गया । मेरा दुःख उमड़ पड़ा, इसलिये मैंने अपने आपको प्रकट कर दिया । कर्म-भोगके सिवा इसे मैं और क्या कहूँ ? जिस समय मैनासुन्दरी पर मैंने दुःख पड़ते देखा था, उस समय मैं मन-ही-मन प्रसन्न और गर्वित हुई थी; किन्तु आज मुझे उसी मैना-पतिका दास्यत्व अंगीकार करनी पड़ा । अभिमानका फल मुझे हाथो-हाथ मिल गया । अब मुझे यह पूर्ण विश्वास हो गया है, कि मैनासुन्दरी हमारे वंशमें विजय-पताकाके समान है । मैनाको जैन धर्म रूपी कल्पवृक्षके मधुर फल चखनेको मिले और मैं मिथ्यावाद रूपी विष-वृक्षके विषैले फल चख रही हूँ । एक ही समुद्रसे निकले हुए अमृत और विषमें जिस प्रकार जमीन आस-मानका अन्तर होता है । उसी प्रकार मुझमें

और मैनासुन्दरीमें अन्तर है। मैना दोनों कुल-
के मुखको उज्ज्वल करनेवाली मणि-दीपिकाके
समान है ; किन्तु मैं सावनकी अँधेरी रात
जैसी हूँ। मैनाके दर्शनसे प्राणियोंका
कल्याण हो सकता है, मुझे देखकर उन्हें पाप
लग सकता है ।

इस प्रकार मैनासुन्दरीकी वास्तविक प्रशंसा
कर सुरसुन्दरीने सबके आनन्दमें ऐसी वृद्धि
की, जैसी नाटक देखनेसे शायद ही होती है ।
श्रीपाल और उनकी माता प्रभृतिने सुरसुन्दरी-
को बहुत आश्वासन दिया । मैनासुन्दरीने भी
उसे गलेसे लगाकर बहुत ही प्यार किया । अब
सुरसुन्दरी नटीका वेश त्याग कर मैनासुन्दरीके
साथ रहने लगी। कुछ दिनोंके बाद श्रीपालने एक
दूत भेजकर शङ्खपुरसे अरिदमनको बुला भेजा
और सुरसुन्दरीको उसके हाथोंमें सौंपकर, उसे
विदा किया । अनन्तर श्रीपालकी असीम कृपासे
दोनों दम्पति सानन्द जीवन व्यतीत करने लगे ।

पाठकोंको स्मरण होगा, कि बाल्यावस्थामें सात सौ कोढ़ियोंने श्रीपालकी रक्षा की थी । उनको जब इस समय यह मालूम हुआ, कि हमारे राजा उज्जयिनी आये हैं, तब वे लोग भी उज्जयिनी दौड़ आये और श्रीपालके दर्शन कर बहुत ही प्रसन्न हुए । श्रीपालने भी उन सबोंको राणाकी उपाधिसे विभूषित कर उन्हें अपनी सेनाका नायक बनाया ।

चम्पानगरसे आकर मल्लिषागर मन्त्रीने भी श्रीपालके सम्मुख स्त्रि भुकाया । उन्होंने पूर्ववत् फिर उसे उसके पद पर नियुक्त कर दिया । इसी प्रकार अनेक स्वजन-स्नेही उनके पास आये । सबोंकी समुचित अभ्यर्थना कर उन्हें अपने यहाँ आश्रय प्रदान किया । सब लोग उनकी छत्र-छायामें रहकर सानन्द जीवन व्यतीत करने लगे ।





युद्धमें विजय ।



स समय श्रीपालके दिन बड़े ही आ-
नन्दमें व्यतीत हो रहे थे । उन्हें अब
कोई कष्ट न था । एक ओर उनके पास
जैसी अपार सम्पत्ति थी, दूसरी ओर वैसी ही
सेना और राजसी ठाठ-बांठ था । सिर्फ कमी
उन्हें एक ही बातकी थी और वह यह थी, कि
उनके पिताका राज्य अबतक उनके अधिकारमें
नहीं आया था । इसी सम्बन्धमें एक दिन उनसे
मतिसागर मन्त्रीने कहा—“कुमार ! तुम्हें यह
तो मालूम ही है, कि मैंने तुम्हें तुम्हारे पिताके
राज-सिंहासन पर आसीन कराया था ; किन्तु
तुम्हारे काका अजीतसेनने तुम्हारी बाल्यावस्था

से लाभ उठाते हुए तुम्हारा राज्य अधिकृत कर लिया था । अब तुम्हें वह राज्य पुनः प्राप्त करना चाहिये । बल होने पर भी यदि पिताका राज्य प्राप्त न किया जा सके, तो वह बल बेकार है । यदि तुम अपने पिताका राज्य नहीं ले सकते तो फिर यह सेना और यह साज-समाज किस लिये ? मेरी राय है, कि हम लोगोंको भीतर-ही-भीतर तैयारी कर अचानक आक्रमण कर देना चाहिये । इससे अनायास ही वह राज्य हमारे हाथोंमें आ सकता है ।”

मन्त्रीकी यह बात श्रीपालके मनमें जँच गयी । उन्होंने कहा—“तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है । मुझे अपने पिताका राज्य हस्तगत करना ही चाहिये; किन्तु मेरा कहना यह है कि यदि सामसे काम निकलता हो, तो दण्ड-नीति से काम क्यों लिया जाय ? यदि गुड़ देनेसे ही काम निकलता हो, तो विष क्यों दिया जाय ?”

मन्त्रीने कहा—“अच्छा, ऐसा ही किया

जाये। पहले अजीतसेनके पास एक दूत भेजकर उसे अच्छी तरह समझा दिया जाये। अनन्तर यदि वह समझबूझ कर अपने आप ही राज्य लौटा दे, तो युद्धका कोई झमेला न किया जाये।”

श्रीपालने कहा—“हाँ, मेरी भी यही राय है, वैसे ही कीजिये।”

मन्त्री और श्रीपालकी इस सलाहके अनुसार चतुर्मुख नामक एक चतुर दूत, उसी दिन चम्पानगरीकी ओर भेज दिया गया। वह यथा समय चम्पानगरी पहुँचा। वहाँ पहुँचनेपर अजीतसेनकी सभामें उपस्थित हुआ। अजीतसेनने उसे बैठनेके लिये समुचित आसन दिया। दूतसे जब उसके आगमनका कारण पूछा गया, तब उसने अजीतसेनसे कहा—“राजन् ! आपने श्रीपाल कुमारको बालक समझकर बाल्यावस्थामें विद्या और कलाओंका सम्पादन करनेके लिये विदेश भेजा था, सो अब उन्होंने सब विद्या

और कलाओंका ज्ञान प्राप्त कर लिया है । उन्होंने चतुरंगिणी सेना भी एकत्रित कर ली है । अब वे आपके शिरसे राज्य-भार उतारना चाहते हैं । आपकी भी उम्र बड़ी हो चली है । ऐसी अवस्थामें आपको स्वयं समझबूझ कर राज्य-भारसे मुक्त हो जाना चाहिये । मैं समझता हूँ कि श्रीपालका प्रताप आपसे छिपा न होगा । इस समय अनेक राजे महाराजे उनके अधिन हैं और अनेक उनके आश्रयमें रहते हैं । आपको भी उनका अनुकरण करना चाहिये था । आपने वैसा न कर उनसे विरोध खड़ा किया है; किन्तु वह अनायास ही इस विरोधको दूर कर सकते हैं ; क्योंकि आपमें और उनमें बड़ा ही अन्तर है । कहाँ राई और कहाँ पर्वत ? कहाँ तारा और कहाँ शरद्वचन्द्र ? कहाँ खद्योत और कहाँ सूर्य ? कहाँ मृग शावक और कहाँ पञ्चानन सिंह ? कहाँ हिंसा-मुक्त यज्ञ और कहाँ दया प्रधान जैन-धर्म ? कहाँ भूठ और कहाँ

सत्य ? कहाँ काँच और कहाँ रत्न ? इन सबों में उत्तम वस्तुओंके स्थानमें श्रीपालकी और नीच वस्तुओंके स्थानमें आपकी गणना की जा सकती है । आपसे और उनमें सचमुँच ऐसा ही अन्तर है । मैं आपसे यही निवेदन करना चाहता हूँ कि यदि आपको अपने प्राणोंकी ममता हो, तो अहंकार छोड़ कर, उनके पास चलिये और उनका राज्य उनके हाथोंमें सौंपकर अपने कर्तव्यका पालन कीजिये । अन्यथा युद्धके लिये तैयार हो जाइये । किन्तु यह भी स्मरण रहे, कि उनकी अपार सेनाके सम्मुख आपकी सेना किसी हिसाबमें नहीं है । आप किसी तरह उनका मुकाबला नहीं कर सकते । निर्बल होकर बलवानसे युद्ध करना वह जान-बूझ कर ही संसारमें अपनी हंसी कराना है । यदि आप मेरी बातोंपर ध्यान न देंगे ओर श्रीपालसे युद्ध करनेकी तैयारी करेंगे, तो निःसन्देह संसार आपको हंसेगा । फिर जैसी आपकी इच्छा ।”

दूतकी यह बातें सुन राजा अजीतसेन मारे क्रोधके आगबबूला हो गये । उनके शिरपर मानो भूत सवार हो गया । उन्होंने गरज कर कहा—“हे दूत ! तू अपने स्वामीके पास जाकर उनसे कह दे, कि चम्पानगरीका राज्य इतनी आसानीसे नहीं मिल सकता । जिस प्रकार भोजनमें मधुर, अम्ल, और कटु किंवा तिक्त स्वादके पदार्थ आदि मध्य और अन्तमें उपस्थित किये जाते हैं, उसी तरह तूने सभी तरहकी बातें मेरे सामने कही हैं । तेरे इस गुणके ही कारण शायद तेरा नाम चतुर्मुख पड़ा है । तूने कहा है कि श्रीपालको बालक समझकर कला-कुशलता प्राप्त करनेके लिये मैंने उसे विदेश भेजा था, किन्तु यह सत्य नहीं है । मैं उसे अपना मानता ही नहीं । बल्कि अपना शत्रु समझता हूँ । केवल बालक समझ कर ही मैंने उसे जीता छोड़ दिया था । सम्भव है कि इस समय वह बलवान हो गया हो, किन्तु मैं उससे निर्बल

नहीं हूँ । मैं समझता हूँ कि श्रीपालपर अब यमराजने नजर लगायी है । इसीलिये उसने सोते हुए सिंहको जगानेका दुस्साहस किया है । उससे कह देना कि यदि वह मुझे छेड़ देगा, तो उसकी इज्जत बचनी कठिन हो जायेगी । मैं अपने राजाकी सेनाको बहुत बड़ी बतलाता हूँ किन्तु वह दूसरोंके लिये बड़ी होगी । मैं अकेला ही उसके सैन्य-सागरमें वड़वानलकी तरह काम करूँगा । अपने राजासे कहना, कि बलकी परीक्ष वातोंसे नहीं हुआ करती । कौन बलवान और कौन निर्बल है यह युद्ध-क्षेत्रमें आप ही सिद्ध हो जायेगा । तेरे राजाने रणके लिये जो निमन्त्रण भेजा है, उसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ ।”

राजा अजीतसेनका यह उत्तर लेकर चतुर्मुख उसी समय उज्जैनके लिये चल पड़ा । वहाँ पहुँचनेपर उसने श्रीपालसे सब बातें कह सुनार्यीं । सुनते ही श्रीपालको क्रोध आ गया । उसी समय उन्होंने सेनाको सुसज्जित कर चम्पा-

नगरीकी ओर प्रस्थान किया । क्रमशः चम्पा-
नगरीके समीप पहुँचे । वहाँ नदीके तटपर एक
उपयुक्त स्थान देखकर शिविरकी स्थापना की ।
अजीतसेनको 'यह' समाचार पहलेहीसे मिल
चुके थे, इसलिये वह भी अपनी सेना लेकर श्री
पालके सामने आ डटे ।

लड़ाई करनेके पहले अनेक प्रकारके मङ्गला-
चार किये गये । जब लड़ाईका समय हुआ तब
चारों ओर रण-भेरियाँ बज उठीं । सैनिकोंने
शस्त्रोंकी पूजा की । भाट-चारणोंने बिरदावली
गा-गाकर उनको मरने मारनेके लिये उत्साहित
किया । चारों ओर वीरता और उत्साहका मानो
समुद्र उमड़ रहा था । दोनों ओरकी सेनायें
युद्धके लिये प्रस्तुत हो गयीं । सूर्य भी तिमिर-
शशिका निकन्दन करनेके लिये रुद्र रूप
धारण कर, इसी समय पूर्व ओर उदयाचलपर
आ डटे ।

बस, अब सेनापतिका आदेश मिलने भरकी

ही देर थी । दोनों ओर रण-स्तम्भ रोपित हो जानेपर सेनापतिने शंख-ध्वनि कर युद्ध करनेकी आज्ञा दे दी । आज्ञा मिलते ही पैदलसे पैदल और घुड़सवारोंसे घुड़सवार भिड़ गये । वर्षाकी भांति बाण-वृष्टि होने लगी । आकाशमें ध्वजायें फरकने लगी । बिजलीकी तरह तलवारें चमकने लगीं और सैनिकोंकी, हुंकारसे सारा आकाश गूँज उठा । किसी किसी समय ऐसा मालूम होता था, मानो वर्षा ऋतु आ गयी है । भयंकर और विशाल तोपोंकी गोलाबारीके समय जो गर्जना होती थी, वह मेघ गर्जनाका भास कराती थी । गोला, जमीनपर गिरते ही अनेक शत्रु-ओंका काम तमाँ कर देता था । कहीं कोई शत्रुका शिर उड़ाये देता था, तो कोई शत्रुके बाणोंका प्रतिकार करता था । कोई मदोन्मत्त हाथियोंके गण्डस्थल छेद रहा था, तो कोई अपने वीर नादसे शत्रुओंको आतङ्कित कर रहा था । चारण लोग इस समय भी बिरदावली

सुना-सुना कर शूर-वीरोंको उत्साहित कर रहे थे । इस समय जुभाऊ बाजे अन्ततक लड़नेके लिये नवजीवनका सञ्चार कर रहे थे । यह सब देख-सुनकर श्रीपालके सैनिक मानो मदोन्मत्त होकर भूमने लगे ।

सेनापतिने उचित अवसर देखकर सैनिकों को शत्रु-दलमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दे दी । आज्ञा मिलते ही सब उसी ओर पिल पड़े । देखते-ही-देखते न जाने उन्होंने कितनोंके शिर उड़ा दिये और न जाने कितने घोड़े-हाथी और रथोंका सर्वनाश कर डाला । श्रीपालके सैनिकोंकी इस मारसे अजीतसेनकी सेनामें भगदड़ मच गयी । अजीतसेन अब तक दूरहीसे सब रंग देख रहा था । जब उसने देखा, कि उसकी सेनामें विशृङ्खलता उत्पन्न हो गयी, तब वह स्वयं अपने सैनिकोंको उत्साहित करता हुआ युद्ध-क्षेत्रमें कूद पड़ा । उसने अपने वीरोंको ललकार कर कहा, कि उनके लिये नमक अदा करने-

का—युद्धमें प्राण देकर अपने स्वामीकी लाज बचानेका यही अवसर . . .

इधर श्रीपाल कुमारके सात सौ सेनानायकों ने जब देखा, कि अजीतसेन स्वयं रण-क्षेत्रमें उपस्थित हुआ है, तब उन्होंने चारों ओरसे उसे घेर लिया और जब वह भली भाँति उनके चक्रमें फँस गया, तब उन्होंने कहा—“राजन ! अभी कुछ बिगड़ा नहीं है । यदि इस समय भी आप अहंकार छोड़ कर कुमारको अधीनता स्वीकार कर लें, तो वे आपको क्षमा कर देंगे ।” किन्तु अजीतसेन पर इन शब्दोंका कोई प्रभाव न पड़ा । बल्कि वह और जोरसे उन सेनानायकोंपर शस्त्रास्त्रके वार करने लगा । सेनानायकोंने भी उसकी यह अवस्था देख कर उसकी मुश्किलें कस लीं । जब यह संवाद फैल गया तो चारों ओर श्रीपालका जय-जयकार होने लगा ।

उसी समय सैनिक लोग अजीतसेनको

बाँध कर श्रीपालके पास ले आये। उन्होंने देखते ही उनके बन्धन छुड़ा दिये। पश्चात् समुचित आसन पर उन्हें बैठा कर कहा—“पूज्य काकाजी ! आप अपने मनमें लेश मात्र भी खेद न करें। आप आनन्द-पूर्वक राज कीजिये। मुझे राज्यकी आवश्यकता नहीं है।”

श्रीपाल कुमारके इतने वचनोंको श्रवण कर राजा अजीतसेनके विचारोंमें बड़ा ही अन्तर आ गया। वे अपने मनमें सोच रहे थे, कि मैंने दूतकी बात न मानी, इसलिये मेरी प्रतिष्ठा नष्ट हो गयी। अपनी शक्तिका विचार किये बिना जो लोग बलवानसे मुकाबला करने दौड़ते हैं और अपने हितकी बात नहीं सुनते, उन्हें मेरी तरह आपत्तिमें ही पड़ना पड़ता है। कहाँ मैं वृद्ध होने पर भी परद्रोह करनेवाला—पराया राज्य हजम कर जानेवाला पापी और कहाँ बाल्यावस्थासे ही परोपकार परायण यह पुण्यवान् श्रीपाल ! मुझमें और इसमें जमीन

आसमानका अन्तर है। गोत्र-द्रोह करनेसे कीर्तिका नाश होता है। राज-द्रोह करनेसे नीतिका नाश होता है और बाल-द्रोह करनेसे सद्गतिका नाश होता है। मैंने यह तीनों द्रोह किये हैं, इसलिये मुझे तीनों प्रकारका भय है। संसारमें जिस पापको कोई नहीं करता, उसे मैंने किया है, अतः नरकके सिवा मेरे लिये दूसरा स्थान ही नहीं है। इन पापोंसे मुक्त होनेके लिये अब मैं क्या करूँ ? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है, जो मुझे इन पापोंसे मुक्ति दिला सके ? है, अवश्य ही है। जिनराजकी प्रवर्ज्या ग्रहण करनेसे ऐसे पापोंसे मुक्ति मिल सकती है। एवं उससे आत्माका कर्म-मल दूर होकर वह भी शुद्ध हो सकती है। वह प्रवर्ज्या दुःख रूपी वल्लरियोंके वनको दहन करनेके लिये दावानलके समान है। शिव-सुख रूप वृक्षके मूलके समान है, गुण-समूहका आगार है, सब प्रकारकी आपत्तियाँ उससे दूर हो सकती

हैं । मोक्ष-सुखके लिये वही आकर्षण है, भव-भयके लिये वही निर्वर्षण है, कषायरूप पर्वत-को भेदनेके लिये वही वज्र है और नोकषाय रूप दावानलको प्रशमित करनेके लिये मेघके समान है ।”

अजीतसेनके मनमें इस प्रकारके उत्तम विचार उत्पन्न होनेपर वे प्रवर्ज्याके गुण ग्रहण करने एवं संसारके दोष समझने लगे । इससे मोह-मदिरा द्वारा चढ़ा हुआ उन्माद नष्ट होकर शुभ भावनायें अंकुरित होने लगीं । इस प्रकार मनोभावनाके परिवर्तित हो जानेसे पाप स्थिति नष्ट हो गयी और कर्मने सहायता पहुँचायी । इसलिये तुरन्तही राजा अजीतसेनको अपने पूर्व जन्मकी स्मृति हो आयी । अन्तमें उन्होंने उसी क्षण श्रीपालके सम्मुख गार्हस्थ्यका त्याग कर चारित्र अङ्गीकार कर लिया । राजा अजीतसेन-को इस प्रकार चारित्र सहित देखकर श्रीपाल कुमारको बड़ाही आश्चर्य हुआ । वे उसी समय

सपरिवार उन्हें वन्दन कर इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे । हे मुनीश्वर ! आपने उपशम रूपी तलवारसे क्रोधको निर्मूल कर दिया है । मृदुता—निरभिमानता रूपी वज्रसे मद-अहङ्कार रूपी पर्वतोंका चूर्ण कर डाला है । सरलता रूपी कुदालीसे मायाकी विष-वल्लरीको जड़मूलसे नष्ट कर दिया है और निर्लोभ रूपी नौका द्वारा महान लोभ-सागरको पार करनेमें आपने सफलता प्राप्त की है । भव रूपी वृक्षके मूल रूपी इन चार कषायोंका आपने निकन्दन कर डाला है । साथ ही सुरासुर और मनुष्य मात्रको अहंकार रूप बलसे जीतने वाले काम-देवको भी आपने अपने पराक्रमसे न केवल पराजित ही किया है, बल्कि उसे वश कर लिया है, किन्तु इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि जिस सिंहकी गर्जना सुनकर हाथियोंका भी चिंघाड़ना बन्द हो जाता है, वह सिंह भी अष्टापदके सामने बकरेकी तरह दीन हो जाता

है । आपने रति और अरतिका निवारण किया है । भयको तो आपने अपने हृदयमें स्थान ही नहीं दिया है । आपने बुरी इच्छाओंका भी त्याग किया है । पुद्गल और आत्माको विनाशी एवम् अविनाशी समझकर आपने अपने हृदय-में उन्हें भिन्न-भिन्न स्थान दिया है, इसलिये आपको किसी वस्तुकी इच्छा ही नहीं होती, क्योंकि पुद्गल नाशवान होनेके कारण उसकी इच्छा ही करना व्यर्थ है और जो आत्मा अविनाशी है वह तो आपके पास ही है ।

परिशहकी सेना आपसे युद्ध करने आयी थी, किन्तु मदोन्मत्त हाथी जिस प्रकार अकेला ही सबका सामना करता है, उसी प्रकार अकेले आपनेही उससे युद्ध कर उसे भगा दिया । इसके अतिरिक्त उपसर्गों ने आपके मोक्ष-मार्ग-में बाधाएँ उपस्थित की, किन्तु आप शरीरकी भी सृष्टि नहीं रखते, इसलिये वे आपको अपने भयङ्कर जालमें उलझा न सके ।

हे स्वामिन् ! आपको मोक्ष-मार्गमें अग्र-सर होते समय राग और द्वेष नामक दो प्रबल चोर मिले । उन्हें आपने धैर्य्य रूपी वज्रसे इस प्रकार प्रताडित किया, कि वे फिर आपकी ओर आँख उठाकर देखनेकी भी हिम्मत न कर सके । अनन्तर इस संसार-सागरको पार करनेके लिये मार्ग खोज करने पर आपको अनेक मार्ग दिखायी दिये ; क्योंकि जीवके जितने भेद हैं , उतने ही संसार-सागरके मार्ग होनेके कारण ऐसा होना स्वाभाविक था । अतः आपने उन मार्गोंमेंसे सरल मार्ग खोज निकालनेके लिये, समता नामक योगनालिकासे देखना आरम्भ किया । इससे चित्तके अव्यवसायकी स्थिरता एवं मन, वचन और कायकी एकाग्रता होनेपर आपको अनेक मार्ग दिखायी दिये; किन्तु उनसे सिद्ध स्थान तक पहुँचना आपको असम्भव प्रतीत हुआ । अतएव आपने और भी सूक्ष्म दृष्टिसे मार्गोंका निरिच्छण किया । इस बार

आपको उदासीनता नामक एक पगडण्डी दिखायी दी । वह भव-चक्रके भयसे रहित थी, इसलिये आपने मन वचन और कायाकी स्थिरता पूर्वक उसीपर चलना आरम्भ किया । आप बाह्य और आभ्यन्तरिक सब प्रकारके विकारोंसे रहित होनेसे एवं क्षमादि गुणोंसे युक्त होनेसे आपके इस मार्गमें कोई बाधा न दे सका । भिन्न-भिन्न नय-सम्मत भिन्न-भिन्न मार्ग आपको दिखायी दिये ; किन्तु आपने सर्व नय-सम्मत वीतराग परमात्माका ही मार्ग ग्रहण किया और निश्चय-नयके पक्षपाती बनकर कर्म-लेप रहित हुए हैं, अतएव आप मोक्ष-मार्गके पूर्ण अधिकारी बने हैं ।

हे स्वामिन् ! आपकी अमुभव शक्ति जागरित हो चुकी है अतएव आप अनुभवी योगी हैं । आप अपने अकषायी, अवेदी, अलेशी, अयोगी और अतीन्द्रिय प्रभृति गुणोंके भोगी

हैं । आप धर्म संन्यासी हैं, तत्त्व मागेक प्रशस्त
शक हैं, विभाव दशाको छोड़कर स्वभाव दशामें
रमण करनेके कारण आत्मदर्शी हैं और कषाय
का त्याग कर उपशम रस बरसानेवाले होनेके
कारण उपशम वर्णी हैं । इस उपशम रसकी
वर्षासे आपने अपने गुण रूपी उद्यानको सींच-
कर उसे बहुत ही परिपुष्ट बनाया है ।

मुनिराज छठे और सातवें गुणठाणोंमें
निवास करते हैं । इन दोनों गुणठाणोंकी भिन्न
भिन्न स्थिति अन्तर्मुहूर्त्तकी है और एकत्रित
उत्कृष्ट स्थिति, देशसे कुछ कम क्रोड़ पूर्वकी है
किन्तु आप तो उन दोमेंसे सातवें गुणठाणेमेंही
निवास करते हैं । यद्यपि संसारके क्रमानुसार
आपको छठे प्रमत्त गुणठाणेमें जाना पड़ता है,
किन्तु वहाँ आप लघु अन्तर्मुहूर्त्त ही स्थिति
करते हैं और अप्रमत्त गुणठाणेमें उत्कृष्ट अन्त-

मुहूर्त स्थिति करते हैं।* आपका रूप किसी-को गम्यमान न होनेके कारण आप अगम्य हैं। आपके अध्यवसाय चर्म-चक्षुओंसे गोचर नहीं हो सकते अतएव आप अगोचर हैं। आप पाँचों इन्द्रियोंको दमन कर सकते हैं और तृष्णा 'रूपी तृष्णा तो मानो आपको स्पर्श ही नहीं कर पाती। हे मुनिराज ! आपकी बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी मुद्रा परम सुन्दर है। ऊपरसे आपको आकृति बड़ी ही सुन्दर है और गुणोंके कारण अभ्यन्तर आकृति भी वैसी ही परम रमणाय है। गुणोंके कारण आपको तुलना इन्द्रके साथ की जा सकती है। आपकी बाह्य लीला आपके अभ्यन्तरकी उपशम लीलाको सूचित करती है; क्योंकि जब किसी वृद्धके

*लघु अन्तर्मुहूर्त आठ-नव समयका और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त दो घड़ीमें एक समय कमका कहलाता है। स्तुतिके कारण ही यहाँ ऐसा कहा गया है। वास्तवमें जीव अधिकांश समय उडे गुणठाणेमें ही रहता है। सातवें गुणठाणेमें बहुत ही भव्य समय रहता है।

भीतरमें अग्नि प्रज्वलित होता रहता है, तब वह बाहरसे हरा-भरा नहीं दिखायी देता ।

हे मुनिराज ! आप वैरागी अर्थात् राग-रहित है, त्यागी अर्थात् बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग करनेवाले हैं ।^७ आप पूर्ण भाग्यशाली हैं । आपकी कुमति नष्ट हो गयी है और शुभ मति जागरित हुई है । आप भव-बन्धनसे मुक्त हो गये हैं । काका होनेके कारण आप पहलेसे ही मेरे पूज्य थे, किन्तु अब आप समस्त संसारके पूज्य हो गये हैं । मैं पहले भी आपको वन्दन करता था, किन्तु अब आप उपशमके आगार मुनि महाराज हो गये हैं, अतएव आपको बारंबार वन्दन करता हूँ ।”

इस प्रकार मुनिराज अजीतसेनकी स्तुति करनेके बाद श्रीपालने अपने पिताका राज्य छोड़

* बाह्य परिग्रहका तात्पर्य स्त्री पुत्र तथा धन-धान्यसे और अभ्यन्तर परिग्रहका तात्पर्य विषय-कषायादिसे है ।

कर शेष समस्त राज्यका उत्तराधिकारी अजीत-सेनके पुत्र गजगतिको नियुक्त किया । इस तरह पुण्य-बलसे श्रीपालने नाना प्रकारसे स्व-कार्यकी सिद्धि की और स्वजन-स्नेही तथा सज्जनोंको सुखी किया । अनन्तर उन्होंने चम्पानगरीमें प्रवेश किया । उस समय प्रजाने समूची नगरीको उत्तमता-पूर्वक सजाया था । चारों ओर ध्वजा-पताकायें लहरा रही थीं । रास्तेमें छाया करनेके लिये वस्त्र बांध दिये गये थे । स्थान-स्थानपर नाटकोंका अभिनय हो रहा था । रम्भा जैसी सुन्दरियाँ मङ्गल-गान गा रही थीं । आज चम्पानगरीके सामने सुरपुरी भी फीकी मालूम हो रही थी । दूसरी ओर श्रीपाल कुमार अपने ऐश्वर्य और बल-विक्रमके कारण इन्द्रसे भी चढ़े-बढ़े मालूम होते थे ।

जिस समय चम्पानगरीके रास्तोंपर श्रीपालकी शोनदार सवारी निकली, उस समय चारों ओर आनन्द और उत्साहकी लहरें उठ





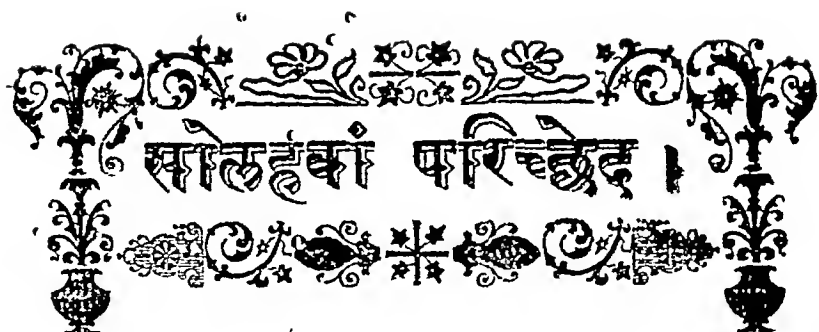
रास्तेमे स्थान-स्थानपर स्त्री-पुरुष मोतियोंसे थाल भर-
भरकर श्रीपालकी अभ्यर्थना करते थे । (पृष्ठ २३३)

रही थीं । रास्तेमें स्थान-स्थानपर स्त्री-पुरुष मोतियोंसे थाल भर-भरकर श्रीपालको अभ्यर्थना करते थे । उस समय स्त्रियोंके कंकण, नेपुर और कटि-मेखलाओंकी भनकार ऐसी मधुर प्रतीत हो रही थी, मानो सुरीले बाजोंकी मधुर भनकार हो रही थी ।

चम्पानगरीमें प्रवेश करनेपर सब राजाओं-ने श्रीपालको उनके पिताके सिंहासनपर आरूढ़ कराया । पट रानीके स्थानपर मैनासुन्दरीका अभिषेक हुआ । शेष आठ रानियाँ उससे नीचे स्थानपर रखी गयीं । मतिसागर प्रधान मन्त्री और धवलके तीनों मित्र उपमन्त्री नियुक्त हुए । अभिषेक और नियुक्तियोंका यह समारोह बड़ेही आनन्दसे सम्पन्न हुआ । इस अवसर पर श्रीपालने याचकोंको मुक्त हस्तसे दान दिया और स्वजन स्नेहियोंको उपहार प्रदान किया । समारोह पूर्ण होनेपर श्रीपाल कुमार न्याय और नीति पूर्वक प्रजाका पालन करने लगे ।

यह सब हो जानेपर भी श्रीपाल कुमार अभी धवल सेठको भूले न थे । उन्होंने कौ-सम्बी नगरीमें उसके उत्तराधिकारियोंकी खोज करायी और वहाँसे उसके पुत्र विमलको अपने पास बुला भेजा । विमल यथा नाम तथा गुण था—अर्थात् वास्तवमें वह विमल ही था । उसके चरित्र और गुणोंकी भली-भाँति परीक्षा करने-के बाद श्रीपालने उसे चम्पानगरीमें ही रख लिया और उसे नगर सेठकी उपाधिसे विभूषित कर विपुल सम्पत्तिका स्वामी बनाया । अनन्तर श्रीपाल कुमारने प्रत्येक मन्दिरमें अट्टाई महोत्सव काराये और स्वयं सिद्धचक्रकी पूजा-भक्ति विशेष रूपसे करने लगे ; क्योंकि उन्हें जो कुछ सुख-सम्पत्ति प्राप्त हुई थी, उसे वे उसीका प्रताप मानते थे । यह एक साधारण नियम है, कि घरमें बड़े लोग जो कार्य करते हैं, छोटे लोग अनायास उसका अनुकरण कर वही कार्य करने लगते हैं, अतएव इस समय

श्रीपाल कुमारके कुटुम्बमें जितने मनुष्य थे, वे सभी सिद्धचक्रको पूजा-भक्ति करने लगे । कुछ समयके बाद श्रीपालने अनेक गगनस्पर्शी मन्दिर बनवाये । जिनकी ऊँची ध्वजायें मानों चन्द्र-मण्डलका अमृत पान कर रही थीं । साथ ही उन्होंने समूचे राज्यमें अमारी पडह बजवाया । न्याय भी ऐसा करते थे, कि लोग राजा राम-चन्द्रसे उनकी तुलना करने लगे । दान-पुण्यके कारण चारों ओर उनकी इतनी कीर्ति फैल रही थी, कि सब लोग दानवीर कर्णके नामको भूल कर प्रातःकाल उन्हींका नाम लेने लगे । एवं उन्हें कल्पवृक्षके समान मनभरने लगे । यह ठीक भी था ; क्योंकि कभी किसीको उनके पाससे खाली हाथ न लौटना पड़ता था । उनके गुण और उनकी कीर्तिके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि वे अवर्णनीय थे ।



अजीतसेन मुनिका धर्मोपदेश ।

का लान्तरमें चारित्रकी वृद्धि होनेपर अजीतसेन राजर्षिको अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ । वे घूमते-घूमते एक समय चम्पानगरी में आ पहुँचे । उनके आगमनका समाचार सुनते ही राजा श्रीपाल अपनी माता और स्त्रियोंको साथ ले, बड़ी धूम-धामसे उनको वन्दन करने गये । वहाँ पहुँचने पर उन्होंने तीन प्रदक्षिणा देकर मुनिराजको तीन बार वन्दन किया । अन्यान्य लोगोंने भी उनका अनुकरण किया । पश्चात् धर्मोपदेश सुननेकी इच्छासे सब लोग उनके सामने समुचित स्थान पर बैठ गये । अनन्तर राजा श्रीपालके अनुरोध करने

पर अर्जीतसेन मुनिने धर्मोपदेश देना आरम्भ किया ।

हे भव्य प्राणियो ! तुम लोग जिन राजके वचन श्रवन कर उन्हें हृदयमें धारण करो और मोहको सर्वथा त्याग कर दो । बिना मोह त्याग किये सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती । जो लोग मोह-जालमें पड़े रहते हैं, वे भव-चक्रमें ही सदा फेरे लगाया करते हैं । जब उनका मोह दूर होता है, तब कहीं वे उन्नत अवस्थाको प्राप्त करते हैं ।

इस संसारमें मनुष्य जन्म दस दृष्टान्तोंसे दुर्लभ है । जब अनन्त पुराणराशि एकत्रित होती है, तभी यह जन्म मिलता है । मनुष्य जन्म भी यदि अनार्य देशमें हुआ, तो निरर्थक ही समझना चाहिये; क्योंकि वहाँ कोई धर्मका नाम भी नहीं लेता । ऐसे स्थानोंमें मनुष्य पाप कर्ममें प्रवृत्त होता है और संसारमें आसक्त होकर जीवन व्यतीत करता हुआ, वह तिर्यच

नरकादि अधोगतिको प्राप्त करता है । वहाँसे फिर ऊँचे उठना उसके लिये बहुत ही कठिन हो पड़ता है । पूर्व जन्ममें जिनके सुकृत्य बहुत ही प्रबल होते हैं, उन्हींको इस आर्य देशमें जन्म मिलता है । आर्य देशमें जन्म होनेपर भी उत्तम कुलकी प्राप्ति होनी कठिन है । हीन या म्लेच्छ कुलमें जन्म होनेपर मनुष्यको आर्य क्षेत्र की प्राप्तिसे कोई लाभ नहीं होता ; क्योंकि म्लेच्छ जातीमें हिंसादि पाप-कर्म कर वह पुनः अधोगतिको प्राप्त होता है ।

आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल और मनुष्य जन्म मिलाने पर भी यदि रूप, आरोग्य और दीर्घायुष्य प्राप्त नहीं हुए, तो आर्य क्षेत्रादिकी प्राप्ति निष्फल हो जाती है । रूपसे उज्ज्वल वर्णका तात्पर्य नहीं है । पाँच इन्द्रियोंकी संपूर्णता ही रूप है । यदि पाँच इन्द्रियाँ पूर्ण न हों—उममेंसे नाक, कान, आँख या जीभ प्रभृतिमें कोई दोष हो; यानी मनुष्य अंधा, काना, बहरा

या गुंगा हो तो उसे यथोचित धर्मकी प्राप्ति नहीं होती । शरीरके सब अवयव ठीक होने पर भी यदि वह व्याधिग्रस्त रहता है, तो धर्म की आराधना नहीं कर सकता । इसी प्रकार यदि वह अल्पायुषी होता है—छोटी उम्रमें ही अपनी इहलोक लीला समाप्त कर देता है, तो आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, संपूर्ण पञ्चेन्द्रियाँ और आरोग्य यह कोई भी उसे काम नहीं आते । उस अवस्थामें, वह केवल मनुष्यका नाम धारण कर इस असार संसारसे प्रस्थान कर जाता है ।

आर्य-क्षेत्र, उत्तम कुल, आरोग्यता, दीर्घायु-प्य प्रभृति मिलनेपर भी सद्गुरुकी प्राप्ति होनी कठिन है । युगलियोंके क्षेत्रमें सद्गुरुका प्राप्ति होतीही नहीं । कर्म-भूमि—आर्य देशमें भी बड़ी कठिनाईसे सद्गुरु मिलते हैं । पूर्व जन्मके शुभ कर्म प्रबल होने पर ही सद्गुरुकी प्राप्ति होती है । यदि पुण्य-योगसे सद्गुरुकी प्राप्ति होती

भी है, तो उनसे लाभ ग्रहण करते, तेरह काठिये बाधा देते हैं ; जिससे सद्गुरुका लाभ होना कठिन हो पड़ता है । यदि तेरह काठियाओंको दूर कर मनुष्य गुरुके पास जाता है और उनके दशन करता है, तो मिथ्यामति होनेके कारण उनकी सेवा-भक्ति नहीं कर पाता । यदि पुण्य-संयोगसे गुरुसेवा करनेकी इच्छाकर उनके समीप बैठता है तो धर्मोपदेश सुनना कठिन हो जाता है; क्योंकि उसके इस कार्यमें निद्रा प्रभृति प्रमाद बाधा देते हैं । यदि पुण्य संयोगसे वह धर्मोपदेश श्रवण करता है, तो उसपर श्रद्धा उत्पन्न होना कठिन हो पड़ती है, क्योंकि सामान्य जीवोंमें तत्त्व-बुद्धिका अभाव होता है । अनेक मनुष्य धर्मोपदेश सुनकर शृङ्गारादि कथा रसमें लीन होते हैं, इसके फल स्वरूप वे अपने सद्गुरु भी खो बैठते हैं । तत्त्व बुद्धि प्राप्त होनेपर भी श्रद्धा आनी कठिन हो पड़ती है । अनेक मनुष्य तो अपनी बुद्धिको सर्वोपरि

मानते हैं और इसीके कारण उन्हें धर्मोपदेशपर श्रद्धा नहीं होती । ऐसे , मनुष्योंका चित्त सदा अस्थिर और डावाँडोल बना रहता है । उन्हें कभी भी तत्त्व-बोधकी प्राप्ति नहीं होती । वे मूर्खोंकी भाँति सदा प्राप्त और अप्राप्तका ही विचार किया करते हैं । जो लोग आगम प्रमाण और अनुमान प्रमाणसे ध्यान-पूर्वक गवेषणा करते हैं, उन्हींको तत्त्व-बोधकी प्राप्ति होती है । तत्त्व-बोधके भी दो भेद हैं ।^१ संवेदन तत्त्व-बोध * और स्पर्श तत्त्व-बोध[†] ।

* आगम—शास्त्रोंके श्रवण करनेसे जिस मनुष्यको जीवादि नवतत्त्वोका श्रद्धा-पूर्वक भलि प्रकार ज्ञान हो, उसके विशुद्ध अध्य-वसाय एवं मन, वचन, कायाकी एकाग्रता द्वारा तथा उत्तम गुरुके सदुपदेशसे धर्मकी वस्तु-स्थितिका जो तत्त्व-बोध हो, उसे स्पर्श तत्त्व-बोध कहते हैं ।

† जो मनुष्य, बिना श्रद्धाके वस्तु-स्थितिको यथास्थिति समझ कर उसे ग्रहण करता है, वह संवेदन तत्त्व-बोध कहलाता है । शास्त्रकारोंने इसे बंध्या स्त्रीकी तरह बतलाया है; यानी इस तत्त्व-बोधसे भव्यजीवोंको कुछ भी फल नहीं होता ।

संवेदन तत्त्व-बोध बंध्य है और स्पर्श तत्त्व-बोधसे कार्यकी सिद्धि होती है अतएव वह फलप्रद है । इसलिये संवेदन तत्त्व-बोधका त्याग कर स्पर्श तत्त्व-बोधको ही ग्रहण करना उचित है ।

स्पर्श तत्त्व-बोधके इस प्रकार दश भेद हैं,
 (१) धर्मका मूल दया है और वह क्षमा गुणसे ही अविरुद्ध भावमें रहती है (२) सर्व गुण विनयसे ही प्राप्त होते हैं और विनय गुण मार्दवके अधीन है । जिसके मनमें मार्दव गुणका वास होता है, उसे सब गुणोंकी सम्पत्ति अनायास ही मिल जाती है । (३) आर्जव—सरलताके बिना जिस धर्मकी आराधना की जाती है, वह अशुद्ध ही होता है । अशुद्ध धर्मके आराधनसे मोक्ष प्राप्ति नहीं होती, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको चञ्जुभावी—सरल होना अत्यन्त आवश्यक है । (४) शौच धर्म भी अत्यन्त आवश्यक है । इसमें अन्न-पानी प्रभृतिकी शुद्धताको द्रव्य शौच और कषायदि रहित शुद्ध परिणतिको भाव शौच

कहते हैं । ज्यों-ज्यों भाव शौचकी वृद्धि होती है, त्यों-त्यों मोक्ष प्राप्ति समीप आती जाती है, इसलिये इसकी भी परम आवश्यकता है । (५) संयम धर्मके पांच आश्रवोंसे दूर होना, पञ्चेन्द्रियोंका निग्रह करना, चार कषायोंका त्याग करना, तीन दण्डोंसे दूर रहना—यह उसके सत्रह भेद हैं । इन सत्रहका त्याग होनेपर ही आत्मा संयम धर्ममें स्थिर हो सकती है, इसलिये संयम धर्मके आराधन करनेकी इच्छा रखनेवालोंको उनसे दूर ही रहना चाहिये । (६) मुक्त धर्म—बन्धु बान्धव, धन, इन्द्रिय जनित सुख, सात प्रकारके भय, अनेक प्रकारके विग्रह, अहङ्कार और ममता आदिके त्यागको मुक्त धर्म कहते हैं । जबतक पौद्गलिक वस्तुओंसे ममत्व बुद्धि रहती है, तबतक मुक्त धर्म (निर्लोभता धर्म) प्रकट नहीं होता । (७) सत्य धर्म—अविश्ववाद योगमें प्रवृत्ति करना, और मन, वचन काया तीनोंमें निष्कपटता रखना, इसका

लक्षण है । स्थानांगसूत्रमें नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चार प्रकारके सत्य बतलाये गये हैं । यह वर्णन केवल जैन दर्शनमेंही पाया जाता है । अन्य दर्शनोंमें सत्यके पूर्ण रूपका प्रतिपादन नहीं किया गया है । इस उत्कृष्ट सत्य धर्ममें प्रवृत्ति करना परमावश्यक है । (८) तप धर्म—इसके बाह्य और अभ्यन्तर मिलकर बारह भेद हैं । यथाशक्ति इनका पालन अवश्य करना चाहिये ; क्योंकि पूर्व संचित हीन कर्मोंको क्षय करनेका प्रधान साधन तप धर्म ही है । आत्मा-से चिपटे हुए चिकने कर्मोंको भी यह अलग कर देता है । (९) ब्रह्मचर्य धर्म—इसके १८ भेद हैं । 'उन अठारह' भेदोंको यथास्थिति समझ कर ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे सब प्रकारके मनः कष्ट दूर हो जाते हैं । (१०) अन्तिम धर्मको अकिंचन धर्म—परिग्रहत्याग कहते हैं । शास्त्र-कारोंने इस धर्ममें मूर्च्छाको ही परिग्रह बतलाया है, इसलिये सब पदार्थों परसे मूर्च्छाका

त्याग करना चाहिये । कोई पदार्थ सीमपं होने पर भी यदि उसपर मूर्च्छा नहीं है तो वह परिग्रही नहीं कहा जा सकता । साथ ही यदि कोई भी पदार्थ समीप न होनेपर भी अनेक वस्तुओंपर मूर्च्छा—वाञ्छना हो तो वह परिग्रही कहा जायगा । इन दस यति धर्मोंमें प्रवृत्ति करना ही मोक्ष प्राप्ति की प्रधान साधना है ।

इन दस धर्मोंमें सर्व प्रथम क्षमा धर्म बतलाया है । उसके इस तरह पांच भेद हैं । —(१) उपचार क्षमा (२) विचार क्षमा (३) विपाक क्षमा (४) वचन क्षमा और (५) धर्म क्षमा । केवल लोगोंको दिखानेके लिये ही क्षमाका आडम्बर करना—उपचार क्षमा है । क्षमाके भेद पर्याय आदि जाननेको विचार क्षमा कहते हैं । बलवान् मनुष्यके समक्ष निरूपाय हो, जो क्षमा की जाती है, उसे विपाक क्षमा कहते हैं । कटु शब्दोंसे किसीका दिल न दुखाना और दूसरेके कटु शब्द सुनकर स्वयं दुःखी न होना—वचन

क्षमा है। आत्माका धर्म ही क्षमा है, यह समझ कर क्षमा धर्मकी आराधना करना और तेरहवें-चौदहवें गुणठाणकी इच्छा करना—धर्म क्षमा कहलाती है। इनमेंसे पहली तीन क्षमाओंसे लौकिक सुखकी और शेष दो क्षमाओंसे परलौकिक सुखोंकी प्राप्ति होती है।

क्षमाके चार अनुष्ठान हैं—(१) प्रीति अनुष्ठान (२) भक्ति अनुष्ठान (३) वचन अनुष्ठान और (४) असंग अनुष्ठान। अनुष्ठानका अर्थ आवश्यक क्रिया है। प्रति क्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान यह तीन प्रीति अनुष्ठान कहलाते हैं। सामायिक, चतुर्विंशति स्तव और बन्दना—यह तीन भक्ति अनुष्ठान कहलाते हैं। आगमके अनुसार आचरण करनेको वचन अनुष्ठान और जो आसानीसे हो जाय उसे असङ्ग अनुष्ठान कहते हैं। स्त्री और माता दोनों नारी जाति और दोनों प्रिय होनेपर भी स्त्री पर जो अनुराग होता है वह प्रीतिराग कहलाता है और

माता पर जो अनुराग होता है, वह भक्तिशुगल कहलाता है । उसी प्रकार प्रतिक्रमण, काउंसग और पञ्चखाण इन तीनोंका वारम्बार सेवन करनेसे गुणकी वृद्धि होती है, इसलिये यह प्रीति अनुष्ठान माने जाने हैं । सामायिक चारित्र, चतुर्विंशति स्तव तथा वन्दना यह तीनों देव-गुरुके सेवा रूप होनेके कारण भक्ति अनुष्ठान रूप माने जाते हैं । आंगनके कथनानुसार ज्ञान क्रियादिक वारंवार समझ कर तदनुसार प्रवृत्ति करना वचनानुष्ठान कहलाता है । दण्डसे कुछ समय तक चक्रको घुमानेके बाद फिर वह बहुत देर तक जिस भाँति अपने-ही-आप घूमा करता है, उसी प्रकार दीर्घकाल पर्यन्त सेवन करनेके कारण जो अनुष्ठान अनायास सफल होता है, उसे असंग अनुष्ठान कहते हैं ।

इसके अतिरिक्त यति और श्रावकों द्वारा सम्पन्न होनेवाली क्रियाओंके इस तरह पाँच भेद हैं ।—(१) विषक्रिया (२) गरलक्रिया (३).

अनुष्ठान (अन्योन्य) क्रिया (४) तद्धेतु क्रिया और (५) अमृत क्रिया । इनमेंसे प्रथम तीन क्रियायें त्याज्य हैं और अन्तिम दो क्रियायें आदरणीय हैं ; क्योंकि उनसे मुक्ति प्राप्त होती है । जो क्रियायें केवल लोगोंको दिखाने के लिये ही की जाती हैं और जो इहलौकिक सुखके लिये एवम् खान-पान, कपड़े-लत्ते, आदि की इच्छासे की जाती हैं, वे विषक्रिया कहलाती हैं । जिस प्रकार विष खानेसे उसी क्षण मृत्यु होती है, उसी प्रकार इन क्रियाओंका फल भी हाथोहाथ मिल जाता है—उस जन्मके लिये तो कुछ भी नहीं बचता । इसे कपट क्रिया भी कहते हैं । दूसरे जन्ममें देव, इन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदिके सुख किंवा स्त्री-पुत्र धन-धान्यादिककी प्राप्तिके लिये जो क्रियायें की जाती हैं, उन्हें गरल क्रिया कहते हैं । जिस प्रकार पागल कुत्तेका विष दो तीन वर्ष तक असर करता है, उसी प्रकार यह क्रियायें भी दो-तीन जन्म तक सांसारिक

फल देती हैं ; किन्तु इनके द्वारा चारित्र धर्मका वास्तविक फल प्राप्त नहीं होता । दूसरोंको क्रिया करते देख, उनकी विधि जाने बिना ही संमूर्छनकी भाँति उठना-बैठना और क्रिया करना, किन्तु उनका अर्थ न समझना—अनुष्ठान क्रिया कहलाती है । यह क्रिया केवल खान-पानके प्रलोभनके ही कारण की जाती है । इसमें शास्त्रोक्त विधि किंवा गुरुके प्रति विनय विवेक प्रभृति बातोंका पता भी नहीं रहता । जो संपूर्ण वैराग्यसे और भद्रिक परिणामसे, गुरुका उपदेश सुन कर, संसारके सब भाव अतित्य समझ, संसारसे विरक्त हो, चारित्र लेता है और शुद्ध राग तथा पूर्ण मनोरथसे जो क्रिया करता है, वह तद्धेतु क्रिया कहलाती है । इसकी विधि शुद्ध नहीं होती, किन्तु क्रिया करनेसे अन्तमें शुद्ध हो जाती है । शुद्ध विधिसे, आत्माके शुद्ध अध्यवसाय-पूर्वक जो क्रिया की जाती है, वह अमृत क्रिया कहलाती है । यह क्रिया

करनेवाले प्राणी विरले ही दिखाई देते हैं ; किन्तु यह क्रिया चिन्तामणि रत्नके समान है । इसके बिना इस संसारसे निस्तार पाना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव होता है, इसलिये निरन्तर इस क्रियाकी प्राप्तिके लिये उद्योग करते रहना चाहिये ।

हे भव्य प्राणियो ! इस प्राणीने भूतकालमें अनेक बार द्रव्यलिङ्ग धारण किया है और क्रियायें भी की हैं ; किन्तु वे क्रियायें शुद्ध न होनेके कारण उनके फलकी प्राप्ति नहीं हुई । जिस समय जीवको सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है और अर्धपुद्गल परावर्तन संसार रह जाता है, तभी शुद्ध क्रिया की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं ।

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप—यह नवपद मुक्तिके वास्तविक साधन हैं अर्थात् इन नवपदोंकी साधना करनेसे प्राणी मुक्ति-सुखको

प्राप्त कर सकता है । इन नव पदोंके ध्यानसे आत्मस्वरूप प्रकट होता है और जिसे आत्म दर्शन हो जाता है, उसके लिये संसार मर्यादित हो जाता है—उसकी अपरिमितता नष्ट हो जाती है ।

जिस प्रकार दर्शन शब्दमें सम्यक्त्वकी प्रधानता है उसी प्रकार उसमें ज्ञानकी भी प्रधानता है । ज्ञानी अर्ध ज्ञानमें जितने कर्मोंका क्षय कर सकता है, अज्ञानी करोड़ों वर्ष पर्यन्त, तीव्र तप करने पर भी उतने कर्मोंका क्षय नहीं कर सकता । ज्ञानी तपस्यासे भी कार्य सिद्ध कर सकता है । एक प्राणी यदि ज्ञानकी वृद्धि करे और दूसरा तपकी वृद्धि करे, तो उन दोनोंमें ज्ञानी प्रथम मुक्ति प्राप्त कर लेता है अर्थात् ज्ञानी तपस्वीसे बाजी मार ले जाता है ।

मोक्ष-प्राप्ति करनेमें सम्यक्त्व और ज्ञानकी जितनी आवश्यकता बतलायी गयी है, उतनी ही आवश्यकता शुद्ध चारित्र्यकी भी मानी

गयी है । जो प्राणी आत्म-ज्ञानमें मग्न होता है, वह पुद्गलके खेलोंको इन्द्रजालके समान मानता है । उनमें वह किसी प्रकार आसक्त नहीं होता । आत्मज्ञानीके लिये संसारमें आसक्त होना सम्भव ही नहीं है ; क्योंकि वह तो पुद्गलके उत्पत्ति और विनाश धर्मको भली भाँति समझता है । इसीलिये वह उनमें लुब्ध नहीं होता । वह जानता है कि पुद्गलोंमें लुब्ध होनेके कारण ही मैं अनन्त कालसे संसारमें भटक रहा हूँ ; इसलिये अब उसमें पड़ना ठीक नहीं । जिस प्रकार अज्ञानी इन्द्रजालको सत्य मानता है, ज्ञानी नहीं मानता, उसी प्रकार अज्ञानी ही पौद्गलिक पदार्थोंमें आसक्त होता है । जो ज्ञानीके वचन सुनकर आत्माको पहचान लेता है और क्षीर-नीरकी भाँति सार-सार समझ कर साधना करता है, वह आठ कर्मोंके आवरणको दूरकर आत्माके मूल गुणको प्रकट करता है और उसे ही सिद्ध पदकी प्राप्ति होती है, इस-

लिये हे भव्य प्राणियो ! तुम्हें आत्माको पहचानने और उसके मूल स्वरूपको प्रकट करनेकी सदैव चेष्टा करनी चाहिये ।”

इस प्रकार अजीतसेन मुनिकां धर्मोपदेश श्रवणकर राजा श्रीपाल खड़े हो, हाथ जोड़ कर उनसे प्रश्न करने लगे कि—“पूज्य गुरुदेव ! आपने जो धर्मोपदेश दिया, उसे सुनकर मैं कृतकृत्य हुआ हूँ । अब मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि कृपया मुझे यह बतलाइये, कि बाल्यावस्थामें मुझे किस कर्मके उदयसे दुष्ट रोग हुआ था ? फिर किस कर्मसे वह अच्छा हो गया ? किस कर्मके कारण स्थान स्थान मुझे चृद्धि-सिद्धिकी प्राप्ति हुई ? किस कर्मके कारण मैं समुद्रमें गिरा ? किस कर्मके कारण मुझे भांड होनेका कलङ्क लगा ? किस कर्मसे यह सब विपत्तियां दूर हो गयीं ? और किस कर्मसे मुझे इन नव स्त्रियों और राज्यकी प्राप्ति हुई ? यह सब बातें

‘जाननेके लिये मैं अंत्यन्त उत्सुक हो रहा हूँ । आप दयालू हैं । परोपकारी हैं । सर्वज्ञ हैं । क्या यह रहस्य मुझे बतलानेकी कृपा न करेंगे ?’

इस तरह राजा श्रीपालके प्रश्न करने पर अजीतसेन मुनिने कहा—“हे श्रीपाल ! प्राणी जो जो कर्म करता है, वह उसे दूसरे जन्ममें अवश्य ही भोग करने पड़ते हैं । किए हुए कर्मोंको बिना भोगे उनका नाश नहीं होता । इस लिये उसके विषाकसे डरनेवाले प्राणियोंको अशुभ कर्म ही न करने चाहियें । इस संसारमें जो सुख या दुःख प्राप्त होता है, वह सब शुभा-शुभ कर्मोंके ही कारण प्राप्त होता है । राजा या रंक, दरिद्री या चक्रवर्ती, सबको कर्मके ही अधीन रहना पड़ता है । कर्मके आगे किसीका बल नहीं चलता । इसलिये पूर्व संचित कर्मोंको सम्यग् भावसे सहन करने चाहियें और नये अशुभ कर्म न करने चाहियें । अब मैं तुम्हारे पूर्व जन्मका वृत्तान्त वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ।

राजा श्रीपालका पूर्व जन्म

इस भरतक्षेत्रमें हिरण्यपुर नामक एक नगर है । कुछ काल पूर्व वहां श्रीकान्त नामक एक राजा राज करता था । उसकी रानीका नाम श्रीमती था । वह बड़ी ही गुणवती और शीलवती थी । जैन धर्मपर उसकी पूर्ण श्रद्धा थी । उसमें एक भी अशुभ प्रवृत्ति दिखायी न देती थी; किन्तु उसके पति अर्थात् राजाको शिकारका बड़ा ही बुरा व्यसन था । रानी उसे बार बार समझाती कि—“हे नाथ ! आप शिकार खेलने न जाइये, क्योंकि यह प्रवृत्ति नरक ले जानेवाली है । आपके इस कामसे पृथ्वी और पत्नी दोनोंको लजा आती है, इसलिये जीव हिंसाकी इस अनीतिकों छोड़ दीजिये । मुंहमें तृण लेनेसे शत्रु को भी चन्नी छोड़ देते हैं, तो

यह निरपराध पशु, जो नित्यही तृण खाते हैं, इन्हें उत्तम क्षत्री कैसे मार सकता है ? यह काम तो किसी गँवारके ही हाथों होना सम्भव है । साथ ही जिसके पास हथियार नहीं होते, उसपर नीतिज्ञ क्षत्री भूलकर भी आक्रमण नहीं करते । फिर आप इन निरस्त्र पशुओं पर कैसे आक्रमण कर सकते हैं ? क्षत्री लोग भागते हुए शत्रु को भी कभी नहीं मारते, तो फिर शिकारके समय जो पशु आपको देखते ही प्राण लेकर भागते हैं, उन्हें मारना क्या आपका कर्तव्य कहा जा सकता है ? पाप-शास्त्रके उपदेशकोंका कथन है कि राज्यकी सीमामें जो वृक्ष, घास, जल आदि चीजें होती हैं, उनका समस्त अधिकार राजाको ही होता है, अतएव जो पशु या पक्षी, राजाकी आज्ञाके बिना ही इन्हें नष्ट करते हों, या जो पशु पक्षी प्रजाको कष्ट पहुँचाते हों, उन पशु पक्षी और जलचरोंको मारनेसे राजाको दोष नहीं लगता । किन्तु

यह ठीक नहीं । उत्तम शास्त्रोंमें सर्वत्र हिंसाकी निन्दा ही की गयी है । हिंसा किसी भी रूपमें, किसी भी स्थानमें, प्रशंसनीय नहीं हो सकती । जो स्वयं सन्तापमें पड़ता है और दूसरोंको भी सन्तापमें डालता है, वह पापी कहलाता है । शिकारीकी भी इसी कोटिमें गणना की जा सकती है । उसे कुल-कलङ्की और कुल-नाशक ही कहना चाहिये । जो दुर्बल पर हाथ छोड़ता है, उसका पराक्रम व्यर्थ है । उसके कार्योंसे संसारमें अपयश ही प्राप्त होता है और यह है भी स्वाभाविक । कोयला खानेसे मुंह काला ही होता है ।”

इस प्रकार रानी अनेक प्रकारसे राजाको समझाती थी, किन्तु राजाके हृदय पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ता था । जिस प्रकार पुष्करावर्त्तमेघके बरसनेपर भी मगसलिया पाषाण भीगता नहीं, उसी प्रकार चाहे जैसा उपदेश देनेपर भी मूर्खपर कोई असर नहीं होती । कई

बार तो उसे हित वचन भी कटु प्रतीत होते हैं और उनसे बोध ग्रहण करनेके बदले वह क्रोध प्रकट करता है, अस्तु ।

एक वह बार राजा सात सौ उद्दण्ड कवचा-रियोंको साथ लेकर शिकार खेलने गया । वहां किसी गहन वनमें उसने एक मुनिको देखा । देखते ही वह अपने साथियोंसे कहने लगा—
“देखो, यह कोई कोढ़ी जा रहा है ।” उसकी यह बात सुनते ही वे लोग उसे बेतरह मारने और अपमानित करने लगे । मुनिपर ज्यों-ज्यों मार पड़ती थी, त्यों-त्यों राजाको आनन्द आता था और वह हँसता था । उधर मुनिके हृदयमें शान्त रसकी अविच्छिन्न धारा बह रह रही थी । वे न तो बोलते थे, न चालते थे, न किसीके इस कार्यका विरोध ही करते थे । राजाके नौकरों-ने उनको अत्यन्त कष्ट दिया । तदनन्तर वे सब लोग उन्हें वहीं छोड़ अपने निवास-स्थानको लौट आये ।

एक दिन राजा अकेला ही शिकार खेलने गया । वहां उसने एक मृगका पीछा किया, किन्तु मृग भाग कर नदी-तटके एक जंगलमें घुस गया । राजा भी उसके पीछे पीछे जंगलमें घुसा; किन्तु वह उस जगह रास्ता भूल गया । भटकता हुआ बड़ी देरमें नदीके तटपर पहुंचा । वहां उसने एक मुनिको काउसगग ध्यानमें निमग्न देखा । उन्हें देखते ही राजाको शैतानी सूझी । उसने मुनिको कान पकड़ कर उठाया और नदीके अगाध, जलमें डुबो दिया । किन्तु पश्चात् उसे कुछ दया आ गयी, इसलिये उसने उन्हें फिर जलसे बाहर निकाल लिया । मूर्च्छित अवस्थामें उन्हें छोड़, जब वह अपने निवास-स्थानको लौटा, तब कौतूहल वश रानीसे यह हाल कह सुनाया । सुनते ही रानीने कहा—
“प्राणनाथ ! आपने यह बहुत ही अनुचित कार्य किया है । किसी साधारण प्राणीको भी दुःख देनेसे अनेक जन्म पर्यन्त दुःख सहन करने पड़ते

हैं, फिर आपने तो एक मुनिको कष्ट पहुंचाया है । अतएव न जाने कबतक आपको इस पाप-के फल भोगने पड़ेगे ?”

रानीकी यह बात सुन राजाको क्षणिक खेद हुआ । उसने कहा—“जो हुआ सो हो गया, अब कभी ऐसा काम न करूंगा ।”

एक दिन कि घटना है, कि राजा अपने महलके झरोखेमें बैठा हुआ था । उसी समय गोंचरीके निमित्त घूमते हुए एक मुनि उधरसे आ निकले । राजाको रानीकी शिक्षाकी विस्मृति हो गयी । उसने अपने आदमियोंसे कहा—“इस भिक्षुकने समूचे नगरको भ्रष्ट कर डाला । इसे इसी समय नगरके बाहर निकाल दो ।” राजाकी आज्ञा सुनते ही उसके अविचारी कर्मचारियोंने मुनिको धक्का दे, बाहर निकालना आरम्भ किया । संयोगवश यह घटना रानीने देख ली । उसे जब मालूम हुआ, कि राजाकी आज्ञासे ही ऐसा किया जा रहा है, तब वह उसी समय उसके पास

पहुँची और क्रुद्ध होकर उसने कहा—“नाथ ! आपको अपनी प्रतिज्ञा भी स्मरण नहीं रहती । अभी उस दिन आपने कहा था, कि अब कभी किसी मुनिको कष्ट न दूँगा, किन्तु फिर भी वही बात करने लगे । ध्यान रहे, ऐसे आचरणोंसे स्वर्ग प्राप्ति दुर्लभ हो जायगी और नरकके दरवाजे खुल जायेंगे । किन्तु इसमें किसीका क्या दोष ? आपको नरक ही पसन्द है, तो कोई इसमें क्या कर सकता है ? रानीको क्रोधित देख कर राजा उसी समय शान्त हुआ । उसे न केवल अपनी भूल ही मालूम हुई, बल्कि अपने इस कार्यके लिये पश्चात्ताप भी होने लगा । उसी समय उसने मुनिराजको अपने महलमें बुला कर उनसे क्षमा प्रार्थना कर अपनी अपरोध क्षमा करवाया । रानीने भी दुःखित होकर मुनिराजसे विनयपूर्वक कहा—“गुरुदेव ! मेरे पतिदेव परम अज्ञानी हैं । इन्होंने आपका अपमान कर भयंकर पाप किया है । कृपाकर अब इससे मुक्त होनेका

कोई उपाय अवश्य बतालाइये ।”

मुनिने कहा—“हे भद्र ! इस भयंकर पापसे यकायक छुटकारा पाना तो कठिन है, फिर भी यदि इसे इसके लिये पश्चात्ताप होता हो और यह इससे मुक्त होना चाहता है, तो नवपदका जप करे, उसकी आराधनाके निमित्त आयम्बिल का तप करे और सिद्धचक्रकी पूजा अर्चा करे । इससे कालान्तरमें इस पापसे मुक्त हो सकेगा ।” यह सुनते ही राजाने उक्त प्रायश्चित्त करना स्वीकार कर लिया । उसी समय मुनिराजसे इसकी विधि आदिकी बातें पूछ लीं । यह सब बताकर मुनिराज वहांसे चल दिये । इधर राजा और रानी—दोनोंने सिद्धचक्रकी आराधना आरम्भ की । अन्तमें उसका उत्सव मनाया, उस समय रानीकी आठ सखियों और राजाके सात सौ सेवक—साथियोंने उसका अनुमोदन किया और उसमें भाग लिया । यह कार्य पूरा होनेपर राजा और रानी अपनेको कृतकृत्य समझने लगे ।

एक समयकी बात है, कि उसी श्रीकान्त राजाने अपने सात सौ सेवकोंके साथ अपने पड़ोसके सिंह नामक राजाके नगरपर आक्रमण किया । उसने नगरीका कुछ भाग लूट लिया और गायोंका एक भुण्ड अधिकृत कर अपने नगरकी ओर लौटा । जब सिंह राजाने यह समाचार सुना, तब उसे बड़ा ही क्रोध आया और उसने अपनी सेना लेकर इन लोगोंका पीछा किया । मार्गमें दोनों दलोंकी भेंट हो गयी । सिंहके सैनिक सिंहकी भांति श्रीकान्तके दलपर टूट पड़े और देखते-ही-देखते उन सात सौ सैनिकोंको स्वर्गका रास्ता दिखा दिया । राजा श्रीकान्तको, किसी तरह अपना प्राण लेकर भागना पड़ा । सिंह राजाने उसकी लूटी हुई समस्त सम्पत्ति और गायोंपर अपना अधिकार कर लिया ।

इस प्रकार सिंह राजाके द्वारा श्रीकान्तके जो सात सौ सैनिक मारे गये थे, वे दूसरे जन्ममें

क्षत्री हुए, किन्तु उन्होंने मुनियोंको सतानेका अपराध किया था, इसलिये वे सबके सब कोढ़ी हो गये । श्रीकान्त राजाका शरीरान्त होनेपर पुण्य प्रभांवसे वह तेरे अर्थात् श्रीपालके रूपमें उत्पन्न हुआ, किन्तु उसने भी मुनियोंको सताया था, इसलिये तुम्हें इस जन्ममें कोढ़ी होना, समुद्रमें गिरना और कलङ्कित होना पड़ा । तेरी जो रानी थी, वह इस समय मैनासुन्दरी हुई है, और तुम्हें जो ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हुई है, वह रानी के आदेशानुसार तूने जो सिद्धचक्रकी आराधना की थी, उसीका प्रताप है । आठ सखियों ने तुम्हारे धर्माश्रयकी प्रशंसा की थी, अतएव वे तेरी छोटी रानियें हुई । इन आठमेंसे सबसे छोटीने अपनी साँतको एकबार कहा था कि—“तुम्हें साँप काट खाय ।” अतएव उसे इस जन्ममें साँपने काटा था । तेरे सात सौ सेवकोंने नवपद महात्म्यकी अत्यन्त प्रशंसा की थी, इसलिये वे इस जन्ममें राणा हुए ।

सिंह राजाने सात सौ सुभटोंको विनाश किया था, अतएव उसे बड़ाही खेद हुआ। अन्त-में उसने चारित्र ग्रहण किया और एक मासका अनशन व्रत धारण कर शरीर त्याग किया। दूसरे जन्ममें यह सिंह राजा मेरे रूपमें हुत्पन्न हुआ। उस जन्ममें तूने मेरे राज्यपर आक्रमण कर उसे लूटा था, इसलिये इस जन्ममें बाल्यावस्थासे ही मैंने तेरा राज्य छीन लिया। उस जन्ममें सात सौ सुभटोंका मैंने विनाश किया था, अतएव इस जन्ममें उन्होंने मुझे बांध कर तेरे सामने उपस्थित किया। पूर्व जन्मके सुकृत्योंके कारण मुझे उस समय जाति-स्मरण ज्ञान हुआ। अतएव मैंने उसी समय अपने आपको सम्हाला और चारित्र ग्रहण किया। क्रमशः मुझे अवधि ज्ञान प्राप्त हुआ, इसलिये मैं तुझे उपदेश देने यहां आया हूं। हे श्रीपाल ! उस जन्ममें जिसने जैसे कर्म किये थे, इस जन्ममें उसे वैसे ही फल मिले। तू यह निश्चय जानना, कि प्राणी

जो कर्म करता है, उसे उसका भोग अवश्य ही करना पड़ता है, अतएव उचित तो यह है कि यथा सम्भव कर्म-बन्धन होनेही न दिया जाय ।

इस प्रकार पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुनकर राजा श्रीपालके मनमें बहुत ही वैराग्य उत्पन्न हुआ । वे अपने मनमें कहने लगे—“अहो ! इस संसारकी नाट्यशालामें मैंने न जाने कितने नाटकोंका अभिनय किया और आत्माको विह्वलनामें डाला । किन्तु अब इससे मुक्ति पानेका कोई उपाय अवश्य करना चाहिये ।” यह सोच कर उन्होंने अजीतसेन मुनिसे कहा—“महाराज ! इस समय चारित्र ग्रहण करने योग्य मेरी अवस्था नहीं है, किन्तु कृपा कर मुझे कोई ऐसी धर्म-क्रिया पतलाइये, जो मेरे लिये उपयुक्त हो और उससे मेरा कल्याण हो ।”

मुनिराजने कहा—“श्रीपाल ! अभी तुम्हें अनेक कर्मोंका फल भोगना है । अतएव इस जन्ममें तुम्हें चारित्रकी प्राप्ति होना कठिन है,

परन्तु नवपदकी आराधना करनेसे तू नवें लोक में देवता हो सकता है । वहांसे च्युत होनेपर तुझे फिर मनुष्य रूपमें जन्म लेना होगा और इसी प्रकार मनुष्यसे देवता और देवतासे मनुष्य होते होते क्रमशः नवें जन्ममें तुझे मोक्षकी प्राप्ति होगी ।”

मुनिराजके इस प्रकार मधुर वचन सुनकर श्रीपालको बहुत ही आनन्द हुआ । उनका शरीर आनन्दके कारण रोमाञ्चित हो उठा । अनन्तर उन्होंने अजीतसेन मुनिके चरणोंमें वन्दन कर उनसे विदा ग्रहण की । मुनिराज भी दूसरे ही दिन वहांसे किसी अन्य स्थानके लिये विहार कर गये । तदन्तर राजा श्रीपाल ने शीघ्र ही शुभ मुहूर्त्त देखकर सपरिवार सिद्धचक्रकी आराधना आरम्भ की । इस समय मैना-सुन्दरीने श्रीपालसे कहा—“नाथ ! पहले जिस समय हम लोगोंने सिद्धचक्रकी आराधना की थी, उस समय हम लोगोंके पास धन न था,

अतएव प्रत्येक कार्य अपनी सामर्थ्यके अनुसार ही किये थे । इस समय अपने पास धनकी कमी नहीं है, इसलिये नवपदकी आराधना भी हमें वैसे ही समारोहसे करनी चाहिये । क्योंकि धन होनेपर भी जो लोग थोड़े धनसे धर्म-कार्य करते हैं, उन्हें उसका सम्पूर्ण फल नहीं मिलता । यह मेरा नहीं बल्कि शास्त्रोंका कथन है । यह सुन कर राजा श्रीपालने कहा—“प्रिये ! मैं तुम्हारी बातसे पूर्ण रूपेण सहमत हूँ । हम लोगोंको इस कार्यमें किसी बातकी कोर-कसर रखनेकी आवश्यकता नहीं है ।” अनन्तर राजा श्रीपालने बड़े समारोहसे नवपदकी आराधना आरम्भ की और उनके समस्त परिवारने भी इसमें योगदान दिया ।



नव पदकी आराधना ।



ना सुन्दरीके अनुरोध करनेपर राजा श्रीपालने नवपदकी आराधना आरम्भ की । सर्व प्रथम उन्होंने अरिहन्त पदकी भक्तिके निमित्त बावन जिनालयवाले नव नये मन्दिर बनवाये । उनमें नव जिन प्रतिमाओंका प्रतिष्ठा करवायी । नव जीर्णोद्धार कराये और नाना प्रकारसे जिनेश्वर भगवानकी भक्ति-पूर्वक पूजा की ।

सिद्ध पदके आराधनके निमित्त उन्होंने सिद्ध प्रतिमा की तीनोंकाल भक्ति-पूर्वक पूजा एवं स्तुति की और तन्मय ध्यानसे उसकी आराधना की ।

आचार्य पदकी आराधनाके निमित्त,

आचार्य महाराजका आदर-सत्कार और उनकी प्रेम-पूर्वक वन्दना, वैयावच्च, सुश्रूषा और सेवना की तथा अशनादि—आहार, वस्त्र तथा उपाश्रय आदिके दान द्वारा इस पदकी आराधना की ।

उपाध्याय पदकी आराधनामें, अध्यापक और विद्यार्थियोंको यथायोग्य अशन, वस्त्र, आसन, आदि देकर, उनके निवास-स्थानका समुचित प्रबन्ध कर दिया । इसी तरह भाव-पूर्वक उक्त पदकी आराधना की ।

मुनि पदकी आराधनाके निमित्त, मुनिकी वन्दना, वैयावच्च, रहनेके लिये उपाश्रय, एवं वस्त्र-पात्र आदि देकर मुनि पदका आराधन किया ।

दर्शन पदके आराधनमें, उन्होंने अनेक तीर्थोंकी भाव-पूर्वक यात्रा की । हर एक तीर्थोंमें सब प्रकारकी पूजायें करवायी । संघ पूजा,—स्वामी वात्सल्यादि किये, रथ-यात्रायें निकल-

वायी और दृढ़ चित्तसे, शासनकी उन्नतिके अनेक कार्य किये ।

ज्ञान पदका आराधन करते समय, उन्होंने सिद्धान्तादि आगम-शास्त्र लिखवाये । अनन्तर वासच्चेपसे उनकी पूजा कर फल-नैवेद्य चढ़ाया । ज्ञानके अनेक उपकरणोंका संचय किया और ज्ञानका अध्ययन करते-कराते उस पदकी आराधना की ।

चारित्र्य पदकी आराधनाके निमित्त, उन्होंने ग्रहण किये हुए व्रत-नियमोंका दृढ़ता-पूर्वक पालन किया । यथा-शक्ति बारह व्रतोंका अंगीकार किया । निरन्तर चारित्र्य-धर्मकी इच्छा की । विरतिवान् श्रावक श्राविकाओंको विनय पूर्वक भक्ति की । यतिजी महाराजकी भी द्रव्य और भावसे श्रद्धा-पूर्वक भक्ति कर यति, धर्मके अनुरागी बने ।

तप पदके आराधनके निमित्त उन्होंने लोक और परलोक विषयक, किसी प्रकारके सुखकी

इच्छा किये बिना, सब प्रकारसे अप्रति बद्धता पूर्वक छः बाह्य और छः अभ्यन्तर बारह प्रकारके तप कर इस पदकी आराधना की ।

इस प्रकार नवपदकी द्रव्य और भाव पूर्वक भली भांति आराधना करते हुए, जब साढ़े चार वर्ष व्यतीत हुए, तब इस तपकी समाप्ति हुई । इस समय राजा श्रीपालने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार बड़ा भारी उजमना किया । जिसका वर्णन होना कठिन है, किन्तु पाठकोंकी जानकारीके लिये पहँले उजमनेमें क्या-क्या करना चाहिये, वह हम यहां संक्षेपमें बताये देते हैं ।

नव नये मन्दिर बनवाना । नव पुराने मन्दिरोंका उद्धार करवाना और नव नयी जिन प्रतिमाओंकी स्थापना करना चाहिये । अनन्तर दर्शन*

* दर्शन पदके उपकरण—सिंहासन, छत्र, चामर चौकि-पट्टोंका त्रिगङ्गा, कलश, थाली, रकेबी, बड़ा कटोरा, छोटि कटोरी, बड़ा कलश, कलसा, माचमनी, अष्ट मंगलिक, भारती, मंगल दीपक, धूपदानी, चन्दन विसनेका भोरसिया, चन्दनका सुट्ठा, केसरकी पुड़िया, धूपकी पुड़िया, वालाकुची, अंग लुहणा,

ज्ञान* और चारित्रिके†, समस्त उपकरण नव नवकी संख्यामें इकट्ठे कर एक सुशोभित मण्डपकी रचना कर उसके मध्यमें नवपद-मण्डल बनाना चाहिये । इस मण्डलके बनानेकी विधि इस प्रकार है :—

एक अष्टकोण नव पंखड़ियोंका कमल बना कर उसके मध्य भागमें श्वेत धान्य (चावल) के

धोती, चदर, कम्बल, मुखकोश—दाढ़ि बन्धना, माला, स्थापना-जी, चन्द्रबा, पूठिया, तोरण, वासकुपी—वासक्षेप रखनेकी धैली, केसरके डिब्बे, काच, मोरपिछी, पुंजनी, दिवी, ध्वजा, घण्टा, झालर, स्थापनाके उपकरण आदि सभी वस्तुएं नव-नव रखना चाहिये ।

* ज्ञान पदके उपकरणमें—पुस्तक*, ठवनी, कोरे कागजके ताव, पटिया, कवली, माला, सांपड़ा, सांपड़ी, चक्कू, कैची, पुस्तक रखनेके डिब्बे, दवात, कलम, पट्टी, बरतना, पेन्सिल, आदि चीजें नव-नव रखना चाहिये ।

† चारित्र पदके उपकरणमें—पात्रोंकी जोड़ी, तरपणी, झोली, चोलपट्टा, चादर, पांगरणी, कम्बल, डण्डा, मुहपत्ति, दण्डासन, आदि वस्तुएं नव-नवकी गिनती कर रखना चाहिये ।

अक्षरोंमें अरिहन्त करना चाहिये । पूर्व दिशामें रक्त धान्य (गेहूं) से सिद्धपद करना चाहिये । दक्षिण दिशामें पीत धान्य (चना) से आचार्य पदकी स्थापना करना चाहिये । पश्चिम दिशामें नील धान्य (मूंग) से उपाध्याय पद बनाना चाहिये । उत्तर दिशामें कृष्ण धान्य (उड़द) से साधु पद बनाना चाहिये । चार विदिशाओं—कोणों में श्वेत धान्य (चावल) से दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चारों पदोंको बनाना चाहिये । सिद्ध और आचार्यके बीचमें दर्शन पद, आचार्य और उपाध्यायके बीचमें ज्ञान पद, उपाध्याय और साधुके बीचमें चारित्र पद और साधु तथा सिद्धके बीचमें तप पद आना चाहिये ।

तदनन्तर इस कमलके आस पास तीन वेदियाँ बनानी चाहिये । इनमें से पहली रत्न सूचक रक्त धान्य मयी, दूसरी सुवर्ण सूचक पीत धान्यमयी और तीसरी रौप्य सूचक श्वेत धान्य मयी बनानी चाहिये । पहली वेदीमें मणि-श्रेणी

सूचक पञ्चवर्ण धान्यके कंगूरे और दूसरी वेदी में रत्न सूचक रक्त वर्ण धान्यके कंगूरे और तीसरी वेदीमें सुवर्ण सूचक पीत वर्ण धान्यके कंगूरे बनाने चाहिये ।

इस मण्डल और मण्डपको अनेक प्रकारसे सुशोभित करना चाहिये । ध्वजा-पताकाओं-से सजाकर उसे ऐसा आकर्शक और रमणीय बना देना चाहिये, जिससे देखने वालोंको अत्यन्त आनन्द प्राप्त हो ।

राजा श्रीपालने भी पाँचो वर्णके उत्तम धान्य मंगाकर उन्हें मंत्रसे पवित्र करा, उपरोक्त विधि से मण्डलकी रचना करवायी । तदनन्तर प्रत्येक पदके गुणानुसार उनपर नारियलके गोले आदि रखे । प्रथम अरिहन्त पदके १२ गुण हैं अतएव बारह नारियलोंके गोलेमें सामान्य प्रकारसे घृत और शर्करा भर, उन्हें श्वेत चन्दनसे रङ्ग कर यथा स्थान रखे । इसके बाद आठ महा प्रातिहार्य सूचक आठ कर्कतन रत्न (?) रखे और

चौतीस अतिशय सूचक चौतीस हीरे रखे ।
इस प्रकार उन्होंने श्रद्धा और भक्ति-पूर्वक
अरिहन्त पदकी अत्यन्त भक्ति की ।

दूसरे सिद्ध पदके ३१ गुण हैं, इसलिये ३१
गोले पूर्वोक्त रीतिसे भरवाकर लाल चन्दनसे
विलेपन करके रखे । साथ ही ३१ प्रवाल मूंगे
रखे और उनके मुख्य आठ गुण होनेके कारण
आठ माणिक्य भी रखे । इस प्रकार राजा
श्रीपालने सिद्ध पदकी भक्ति की ।

तीसरे आचार्य पदके ३६ गुण हैं, अतएव
घी शकरसे भरकर और पीले रंगसे रंगकर ३६
नारियलके गोले रखे । साथ ही ३६ गोमेदक
रत्न और आचार्य महाराज पाँच आचारोंसे
युक्त होते हैं, इसलिये पाँच पीले मणिरत्न भी
रखे । इस तरह राजा श्रीपालने आचार्य
पदकी भक्ति की ।

चौथे उपाध्याय पदके २५ गुण हैं, इसलिये
घी शकरसे भरकर और नील वर्णसे रङ्ग कर २५

गोले रखे । साथ ही २५ नील रत्न (नीलम) भी रखे । इस प्रकार उपाध्याय पदकी आराधना कर अपनेको कृतकृत्य समझा ।

पांचवें साधु पदके २७ गुण हैं, इसलिये घी शकरसे भरे हुए और श्याम रङ्गसे रंगे हुए २७ गोले और २७ ही अरिष्ट रत्न (?) रखे । साथही साधुजी महाराज पाँच महाव्रतके स्वामी होनेके कारण पाँच राजपद रत्न (?) भी रखे । इस प्रकार राजा श्रीपालने साधु पदकी भक्ति कर अत्यन्त पुण्य उपार्जन किया ।

छठे दर्शन पदके ६७ भेद हैं अतएव श्वेत चन्दनसे रंगे हुए ६७ गोले और ६७ उज्ज्वल मुक्ताफल (मोती) रखे ।

सातवें ज्ञान पदके प्रधान भेद पांच होनेके कारण पांच गोले रखे और उत्तर भेद ५१ होनेके कारण ५१ मुक्ताफल (मोती) रखे ।

आठवें चारित्र पदके मुख्य पांच भेद होनेके कारण पांच गोले रखे और दूसरे प्रकारसे

उसके ७० भेद होनेके कारण ७० मुक्ताफल (मोती) रखे ।

नवे तप पदके बारह भेद होनेके कारण बारह गोले रखे और अन्य प्रकारसे ५० भेद होनेके कारण ५० मुक्ताफल (मोती) रखे । इस प्रकार इन चार पदोंकी राजा श्रीपालने विनय-पूर्वक भक्ति की ।

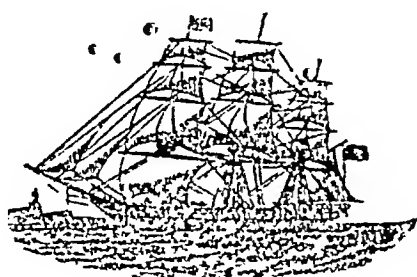
तदनन्तर नव पदके वर्णोंके अनुसार वस्त्र, पुष्प और फल प्रभृति रखे । छुहारे, केले, आम, नारंगी, सुपारी, दाडिम प्रभृति अनेक प्रकारके फलोंके भी नव-नव ढेर लगाये । सुवर्ण-के नव कलश रखे और रत्नोंकी भी नव ढेरियाँ लगायीं । नव ग्रह और दस दिग्पाल प्रभृतिकी भी उनके समीप स्थापना की । उनमें भी उनके वर्णानुसार फल, फूल और वस्त्रादि रखे ।

इस तरह राजा श्रीपालने अत्यन्त उत्साह-से उजमना सम्पन्न किया । उजमनेके अन्तमें

प्रभुके बिम्बको स्नान करा, चन्दन, पुष्प, दीप, अक्षत, फल, नैवेद्य प्रभृति द्वारा अष्ट प्रकारसे पूजा की । अनन्तर आरती और मङ्गल दीपक किया । इस प्रकार जब मङ्गल अवसर सम्पन्न हुआ, तब समूचे संघने श्रीपालको कुकुम्भका तिलक कर अक्षत लगाये और गलेमें इन्द्रमाल आरोपित की । यह सब क्रियायें पूर्ण होने पर राजा श्रीपाल जिस समय अपने महलको लौटे, उस समय नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे । लोग नाच-गान कर रहे थे । भाट लोग बिरदावली बोल रहे थे और चारों ओर उनके नामका जय-जयकार हो रहा था । महलमें आनेपर उन्होंने संघ-पूजा और स्वामी वात्सल्यादि कार्य बड़े ही समारोह पूर्वक सम्पादित किये ।

इस प्रकार पटरानी, मैनासुन्दरी और अन्य आठ रानियोंके साथ सिद्धचक्रकी आराधना पूर्ण कर राजा श्रीपाल बड़े ही प्रसन्न हुए । अनन्तर

उन्होंने अपनी लक्ष राभियोंके साथ बहुत दिनों तक राज-सुख उपभोग किया । उन्हें त्रिभुवन-पाल आदि नव गुणवान पुत्र भी हुए । श्रीपाल-की उत्तरावस्थामें उनके पास नव हजार हाथी, नव हजार रथ, नव लाख घोड़े और नव करोड़ पैदल सेना थी । सब मिलाकर नौ सौ वर्ष पर्यन्त उन्होंने राज किया । पश्चात् वे अपने ज्येष्ठ पुत्र त्रिभुवनपालको अपने सिंहासन पर आसीन करा, स्वयं नव पदकी भक्तिमें तन्मय हो गये ।





नवपद-वर्णन ।



हम अपने पाठकोंको पहले ही बतला चुके, कि राजा श्रीपाल अपने ज्येष्ठ पुत्रको सिंहासनारूढ़ करा, स्वयं नवपदके ध्यान में तन्मय हो गये । अब उन्होंने जो नवपदोंकी आराधना और उनकी स्तुति किस प्रकार की । यह हम विस्तार-पूर्वक अपने पाठकोंको इस परिच्छेदमें बतलानेकी चेष्टा करेंगे ।

अरिहन्त पदका वर्णन ।

अरिहन्त पदकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा—“तीसरे जन्ममें जिन्होंने, बीस स्थाकोंमेंसे एक किंवा अधिक पदोंकी आराधना कर तीर्थ-कर नाम कर्म प्राप्त किया है और जो १४ स्वप्नों

द्वारा सूचित मनुष्यत्व प्राप्त कर चारों निकायके देवताओंके ६४. इन्द्रोंसे पूजित हुए हैं, ५६ दिशाकुमारिकायें और असंख्य इन्द्र, जिनका 'जन्मोत्सव' करते हैं, ऐसे अरिहन्त देवको मैं बारंबार वन्दन करता हूँ ।

जिनके पाँच कल्याणकोंसे अन्धकारमय सप्त नरकोंमें भी थोड़ा बहुत प्रकाश होता रहता है, जो सब प्राणियोंसे, अधिक गुण और अतिशयोंको धारण करनेवाले हैं, ऐसे श्री अरिहन्त भगवानको नमस्कार कर मैं अपने अनेक भव संचित पापोंको दूर करता हूँ ।

पाठकोंको यहां ग्रह बतला देना आवश्यक है, कि तीर्थंकरके अतिशयोंकी संख्या ३४ है । इनमेंसे चार अतिशय तो उन्हें जन्मसे ही होते हैं । ११ अतिशय घाति-कर्मके क्षयसे प्रभुको जब केवल ज्ञान उत्पन्न होता है, तब उसके साथ उत्पन्न होते हैं और १६ अतिशय उस समय

देवकृत प्रकट होते हैं । जन्मसे उत्पन्न होनेवाले
४ अतिशय यह है :—

(१) भगवनका शरीर मल रहित, रोग-
रहित, सुगन्धियुक्त और अद्भुत रूपवान् होता
है । (२) शरीरका रुधिर और मांस गौ-दुग्ध
की भांति उज्ज्वल और दुर्गन्ध-रहित होता है ।
(३) आहार और निहार अदृश्य होते हैं ।
(४) श्वासोच्छ्वासमें कमलके पुष्प जैसी सुगन्ध
होती है ।

धाति कर्मके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले ११
अतिशय यह है—(१) एक योजन जितने
समवसरणमें तीनों भवनके देवता, मनुष्य और
तिर्यश्च समा सकते हैं । (२) भगवानकी बातें
देव, मनुष्य और तिर्यश्च सभी अपनी अपनी
भाषामें समझ सकते हैं (३) भगवान जहाँ
विचरण करते हैं, वहाँ आस-पासकी २५ योजनकी
सीमामें पुराने रोग नष्ट हो जाते हैं और नये रोग
नहीं होते । (४) जिन जीवोंमें परस्पर स्वाभाविक

हीं बर होता है; उनका वैरभाव नष्ट हो जाता है; यानी मित्रकी तरह मिल-जुल कर रहते हैं ।

(५) भगवान जहां विचरण करते हैं, वहां दुष्काल नहीं पड़ता । (६) किसी प्रकारका भय

न हो, और शत्रु सामना न कर सके । (७)

महामारी आदिका उपद्रव नहीं होता । (८)

इति अर्थात् धान्यादिकको नाश करनेवाले जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति नहीं होती । (९) अति-

वृष्टि नहीं होती । (१०) अनावृष्टि नहीं होती ।

(११) भगवानके पीछे देदिप्यमान तेज-राशी—

भामण्डल चमका करता है ।

देवकृत १६ अतिशय इस प्रकार है:—(१)

मणि-रत्नमय सिंहासन सदा साथ रहता है (२)

मस्तक पर तीन छत्रोंकी छाया रहती है । (३)

धर्मध्वज—रत्नमय इन्द्रध्वज निरन्तर आगे

चलता है । (४) बारह जेड़ी चँवर आप-ही-आप

डोला करते हैं (५) धर्मचक्र आकाशमें रहनेपर

भी आगे आगे चलता है । (६) प्रभुके शरीरसे

बारह गुना बड़ा अशोक-वृक्ष उनके मस्तकपर सदा साथ रहता है (७) प्रभु जब पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठते हैं, तब वे चतुर्मुख दिखायी देते हैं । (८) चाँदी, सोना और रत्नमय तीन किले होते हैं (९) भगवान जब चलते हैं, तब सुवर्णमय नव कमल पैरोंके आगे पीछे चलते हैं । (१०) कांटे अधोमुख हो जाते हैं । (११) संयम लेनेके बाद केश और नख नहीं बढ़ते । (१२) कमसे कम एक करोड़ देवता साथ रहते हैं । (१३) सभी ऋतुयें सुखदायी होती हैं । (१४) सुगन्धित जलकी वृष्टि हुआ करती है (१५) जल और स्थलमें उत्पन्न होनेवाले पुष्पोंकी घुटने तक वृष्टि होती है । (१६) उत्तम पक्षी प्रदक्षिणा करते रहते हैं (१७) वायु अनुकूल हो जाता है । (१८) वृक्ष झुक झुक कर प्रमाण करते हैं । (१९) * आकाशमें देवता दुन्दुभी बजाते हैं ।

* भगवानके आठ प्रातिहार्योंमेंसे अशोक-वृक्ष, सुर-पुष्प वृष्टि, चँवर, सिंहासन, दुन्दुभी और छत्र-त्रय यह छह प्रातिहार्य १६ अतिशयोक्तिमें आ जाने हैं । भामण्डल रूप प्रातिहार्य कर्मशक्त

ऐसे ३४ अतिशय युक्त जो अरिहन्त परमात्मा
उनको मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ ।

जो प्रभु गर्भमें उत्पन्न होनेके समयसे ही
तीन ज्ञानोंसे अलंकृत होते हैं । देव जन्ममें
जितना मति, श्रुति और अवधिज्ञान होता है,
उतना नाश न होकर जिनके साथही आता है ।
जो प्रभु अनेक प्रकारकी बाह्य ऋद्धियोंके स्वामी
होनेपर भी, जिस समय जानते हैं कि भोग
कर्म चीण हो गया है, उस समय एक क्षणका
भी विलम्ब न कर, सारे संसारका त्याग कर
चारित्र ग्रहण करते हैं । उस समयसे जिन्हें
चौथा मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है । जो छद्मा-
वस्थामें प्रायः मौन रह कर, घातक कर्मका
अन्त लानेके लिये, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और
बाह्याभ्यन्तर तप द्वारा, प्रबल यत्नसे उसका सवथा
क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं, बादको तीर्थ

होनेवाले ११ अतिशयोंमें है और दिव्यध्वनि, जो कि देवताओं
द्वारा की जाती है, वह वाणीके गुणोंके कारण उसीके अन्तर्गत है ।

कर नामकर्मका उदय होनेसे भव्य, सुलभबोधी और परितप्त संसारी जीवोंको उपदेश द्वारा संसार-सागरके उस पार पहुंचाते हैं और स्वयं जीवनके अन्तिम भागमें, निर्मल ध्यानसे शैलेशी करण द्वारा अयोगी अवस्था प्राप्त कर सिद्धिस्थानको प्राप्त करते हैं, ऐसे वीतराग परमात्माको मैं शुद्ध अन्तःकरणसे बारंबार नमस्कार करता हूं ।

अरिहन्त देवको सब प्रकारकी उपमाये दी जा सकती हैं, किन्तु शास्त्रकारोंने विशेष रूपसे महागोप, महा माहण, निर्यामक और सार्थवाहकी ही उपमा दी है । जिस तरह एक चरवाहा अपने आश्रित गायोंकी सब प्रकारसे रक्षा कर उन्हें उनके नियत स्थान पर पहुंचाता है, उसी तरह भगवन्त भी भव्यजीव रूपी गायोंके समुदायको जन्म और जरा-मरणके भयसे बचाकर मोक्ष रूपी उनके नियत स्थानमें निर्विघ्न पहुंचाते हैं, इसलिये उनको महागोप-

की उपमा दी जाती है । भगवानके उपदेशसे अनेक मनुष्य मुनि-व्रत ग्रहण कर वह कायके जीवोंकी रक्षा करते हैं, तीनों जगतमें वे अमारी-पडह बजवाते हैं और चारों ओर 'मा हण' (मत मारो) शब्द घोषित कराते हैं, इसलिये परमात्माको महामाहणकी उपमा दी गयी है । निर्यामक कहते हैं, नौकाके प्रधान नाविक-मल्लाह (कप्तान) को । जिस प्रकार नाविक, नावपर बैठनेवाले मुसाफिरीकी समुद्रके उपद्रवोंसे रक्षा कर उन्हें नियत स्थान पर पहुँचाता है, उसी प्रकार अरिहन्त भगवान भी भवसागरमें पड़े हुए भव्य जीवोंको उनकी भवस्थिति परिपक्व होने पर, उससे उद्धार कर शुद्ध मार्गमें पहुँचाते हैं और चारित्र्य रूपी नौकामें बैठा कर घातिक कर्मरूपी उपद्रवका सर्वथा क्षय कर उन्हें सिद्ध स्थानमें पहुँचाते हैं । इसीसे उन्हें अपूर्व निर्यामककी उपमा दी गयी है । सार्थवाह अर्थात् मार्ग-रक्षक जिस प्रकार अपने साथके

व्यापारियोंके सालकी स्नाना कर, उन्हें . विंकट रास्तोंको पार करा, निर्दिष्ट नगरमें पहुँचा देता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भी भवंचक्रमें भटकते हुए भव्यजीवोंको अपने सदुपदेश द्वारा सुपथ दिखा कर मोक्षरूपी नगरमें पहुँचा देते हैं । अतएव उन्हें सार्थवाहकी उपमा दी गयी है । यह चारों उपमायें जिनके सम्बन्धमें पूर्ण रूपसे घटित होती हैं, उन अरिहन्त देवको मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ । साथ ही जो परमात्मा उपरोक्त आठ प्रातिहार्योंसे सदा अलंकृत रहने हैं, जिनकी वाणी ३५ गुणोंसे युक्त रहती है और जो समस्त जगत्के जीवोंको उपदेश देते हैं, ऐसे अरिहन्त परमात्माको मैं तन, मन, वचन और कायासे प्रणाम करता हूँ ।”

राजा श्रीपालने इस स्तुतिमें .अरिहन्तकी वाणीको ३५ गुणोंसे युक्त बतलाया है । अतः पाठकोंकी जानकारीके लिये वे ३५ गुण यहां अंकित किये देते हैं—(१) जिस स्थानमें जो

भाषा बोली जाती हो, वह भाषा अर्थ मागधी सहित हो (२) ऐसे उच्च स्वरमें उपदेश देते हों, कि एक योजनके विस्तारमें बैठे हुए सब जीव समान रूपसे सुन सकें (३) ग्रामीण तुच्छ भाषा न बोल कर प्रौढ़ भाषा बोलें (४) मेघ गर्जना-की भांति वाणीमें गम्भीरता हो (५) विवेक और सरलता पूर्वक ऐसी वाणी बोलें, जिससे श्रोताओंको सन्तोष हो (७) सभी सुननेवाले यही समझें कि प्रभु हमें ही सम्बोधित कर यह बातें कह रहे हैं (८, वाणीमें विस्तार-पूर्वक अर्थ को पुष्टी हो (९) वाणीमें पूर्वापर विराध न हो (१०) मुखसे महत्त्व पूर्ण वचन निकलें, जिससे श्रोता लाग सहज ही कह सकें कि महापुरुषोंके मुंहसे ही ऐसी बातें निकलना सम्भव हैं (११) वाणी ऐसी हो कि जिससे सुननेवालोंको सन्देह न हो (१२) व्याख्यान ऐसा हो कि जिसमें खोजते पर भी दोष न मिल सके । (१३) सूक्ष्म और कठिन विषयों पर भी इस तरह बोलें कि

श्रोतागण तुरन्तही समझ जायें (१४) बातें प्रस्ता-
वोचित हों (१५) षट्द्रव्य, नवतत्त्वादिकके स्वरूपको पुष्ट करते हुए, अपेक्षा युक्त विवक्षित बातें कहें (१६) विषय, सम्बन्ध, प्रयोजन और अधिकारीका विचार कर बातें कहें (१७) वाणी पद-रचनासे युक्त हो (१८) नवतत्त्व और षट्द्रव्यका स्वरूप चातुर्यता-पूर्वक कहें (१९) बातों में ऐसी स्निग्धता और मधुरता हो कि सुनने-वालेको घी गुड़से भी अधिक मधुर प्रतीत हों (२०) ऐसी चतुराईसे बातें कहें, जिसमें किसीको यह खयाल न हो, कि मेरा भण्डा फाड़ कर रहे हैं (२१) धर्म और अर्थसे युक्त बातें बोलें (२२) हर एक बातोंमें दोषकी भांति प्रकाश-कारा अर्थ रहे (२३) किसी बातमें पर निन्दा और आत्म प्रशंसाके भाव न हों (२४) ऐसी भाषा हो, जिसे सुननेवाला तुरन्त ही समझ जाय कि ये सर्वगुण-सम्पन्न हैं (२५) वाक्योंमें कर्ता, कर्म, क्रिया, लिङ्ग, कारक, काल और

विभक्तिकी अशुद्धियाँ न हों (२६) ऐसी बातें हों,
 जिससे सुननेवालेको विस्मय-आश्चर्य हो (२७)
 स्वस्थ चित्तसे धीरे-धीरे बोलें—शीघ्रता न करें।
 (२८) बोलनेमें अधिक समय न लगे (२९)
 बातोंसे किसीके मनमें भ्रांति उत्पन्न न हो (३०)
 ऐसी वाणी हो. जिसे वैमानिक, भवनपति,
 प्रभृति देव मनुष्य और तिर्यञ्च सभी अपनी-
 अपनी भाषामें सरलता-पूर्वक समझ सकें (३१)
 ऐसी बातें हों, जिससे शिष्योंको विशेष बुद्धि
 उत्पन्न हो (३२) पदके अर्थ अनेक प्रकारसे बत
 लायें (३३) वाणी साहसिकता-पूर्वक हो (३४)
 पुनरुक्ति दोष न हो (३५) ऐसी बातें हों,
 जिससे सुननेवालेको जरा भी खेद या श्रम न
 हो । इस तरहकी अपूर्व वाणी बोलनेवाले, संसार
 पर उपकार करनेवाले, परम ऐश्वर्यवान्, सर्व-
 गुण-सम्पन्न, सर्व दोष रहित, पुण्य प्रकृतिके
 बलसे जन्मसेही देव इन्द्रादिके द्वारा पूजित
 होनेवाले अरिहन्त भगवानको बारम्बार नम-

स्कार कर और उनके रूपको हृदयमें धारण कर राजा श्रीपालने सिद्ध पदकी स्तुति आरम्भ की ।

सिद्ध पदका वर्णन ।

जिन सिद्ध परमात्माने चौदहवें गुणठाणवे अन्तमें केवल एक समयकी अवधिमें प्रदेशान्तरको स्पर्श किये बिना ही मानव शरीरकी त्रिभाग न्यून अवगाहना-ऊँचायी द्वारा सिद्धि स्थानको प्राप्त किया है, उन सिद्ध परमात्माको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ।

पूर्व-प्रयोग, गति-परिणाम, बन्धन-छेद और असंग-क्रिया द्वारा, जो एक ही समयमें सात राज पयन्त गति कर, समश्रेणीमें उत्पन्न हुए हैं, उन सिद्ध परमात्माको मैं पुनः पुनः वन्दन करता हूँ ।”

यहां, हमारे पाठकोंको यह शंका हो सकती है, कि सर्व कर्म रहित होनेपर भी जीव किस निमित्तको प्राप्त कर यहांसे सिद्धशिला तक

जाता है ? यह शंका स्वाभाविक है । शास्त्र-कारोंने इसकी समाधानीके लिये चार दृष्टान्त दिये हैं, वे यह हैं :—

जीवके 'उर्ध्वगमन'का पहला कारण पूर्व प्रयोग है । धनुष पर बाण चढ़ा कर उसे छोड़ना पूर्व प्रयोग होता है और बादको वह अपने ही आप लक्ष्य स्थानको पहुँच जाता है । ठीक इसी तरह यह जीव भी सब कर्म—कर्म-प्रकृतिके बन्ध, उदय, उदिरणा और सत्ताका जय कर लेता है, तब वह उर्ध्व गमन करता है । इसे ही जीवका पूर्व प्रयोग समझना चाहिये । दूसरा कारण है गति परिणाम । जिस प्रकार अग्निसे निकला धुआँ सदा ऊपरकी ही ओर जाता है, उसी प्रकार जीवकी गति भी सदा ऊपरकी ही ओर होती है । इसीलिये वह शरीरसे अलग होते ही ऊँचे चला जाता है । तीसरा कारण बन्धन-छेद है । एरंडके फल पकने पर धूपके कारण जब फटते हैं, तब ऊपरकी ओर

उछलते हैं; क्योंकि उस वक्त तक वे बँधे रहते हैं। बन्धनका छेद होते ही वे ऊपरकी ओर जाते हैं। यही गति जीवकी भी है। जीव अनादि कालसे कर्म-बन्धनमें बँधा रहता है। ज्यों ही वह कर्म-प्रकृतिसे मुक्त होता है—आत्मा और पुद्गलका सम्बन्ध छिन्न हो जाता है। त्योंही वह ऊपरकी ओर चला जाता है। इसीको बन्धन-छेद कहते हैं। चौथा कारण असंग-क्रिया है। कुम्हार पहले दण्डसे चक्रको घुमाता है, फिर वह अपने आप ही घूमा करता है। उसी प्रकार यह जीव भी असंग क्रियाके बलसे, सर्व कर्म-मल रहित हो, उपाधिके कारणमात्र नष्ट हो जानेपर ऊँचाई की ओर गमन करता है।

४५ लाख योजन प्रमाणं निर्मल सिद्धशिला-
के ऊपर एक योजन जानेपर लोकान्त मिलता
है। उस योजनके २४वें हिस्से यानी एक कोसके
छठें हिस्से—३३३^१/_४ धनुष्य प्रमाण सिद्धिस्थान
है। उत्कृष्ट सिद्धिकी अवगाहना-ऊँचायी इतनी

ही होती है ; क्योंकि उत्कृष्ट ५०० धनुषकी अवगाहना वाले ही मनुष्य मोक्षको प्राप्त करते हैं । इनके शरीरका तीसरा भाग न्यून हो जानेपर ३३३ $\frac{1}{3}$ धनुष जितनी ही अवगाहना रह जाती है । इस सिद्धिस्थानमें एक एक सिद्धका आश्रय मान कर जिनकी सादि अनन्त स्थिति है और सर्व सिद्धका आश्रय मान कर जिनकी अनादि अनन्त स्थिति है—अर्थात् जहां जातेपर फिर उन्हें संसारमें आना नहीं पड़ता, ऐसे अविनाशी सुखको जिन्होंने प्राप्त किया है, उन सिद्ध भगवन्तको मैं बारंबार वन्दना करता हूं ।

एक जंगली मनुष्य राजाकी कृपासे शहर-में पहुँचता है और वहां सब प्रकारके सुखोंका उपभोग कर वह जंगलको लौट आता है और जंगलमें उसके इष्ट-मित्र जब उससे पूछते हैं कि शहरके सुख कैसे हैं तब स्वयं भुक्तभोगी होने पर भी वह जंगली उनका वर्णन नहीं कर

सकता; क्योंकि जंगलमें उसे ऐसी कोई चीजेंही नहीं दिखायी देतीं, जिनसे वह शहरके सुखोंकी तुलना करे। इसी प्रकार केवली भगवान केवल ज्ञान द्वारा सिद्धके सुखोंको जानने हैं किन्तु संसारमें कोई भी सुख ऐसा नहीं दिखायी देता, जिससे उस उपाधि रहित सुखकी तुलना का जा सके। इस प्रकारके उपाधि रहित सुखके भोक्ता सिद्ध परमात्माको मैं त्रिविध वन्दना करता हूँ।

जिस प्रकार एक दीपककी ज्योतिमें दूसरे दीपककी ज्योति समा जाती है, उसी प्रकार एक सिद्धकी अवगाहनामें उतनी ही अवगाहनावाले या उससे न्यूनाधिक अवगाहनावाले अनन्त सिद्ध रहते हैं, फिर भी वहां संकीर्णता होती नहीं। इस प्रकार रहनेवाले, एवं इस संसारकी समस्त उपाधियोंसे मुक्त, सहज समाधिको प्राप्त करनेवाले सिद्ध परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। उनकी स्तवना करता हूँ और उनकी

शरण स्वीकार कर, उनके समान होनेकी अभिलाषा करता हूँ ।

• जो अनन्त, अप्रुनर्भव, अशरीरी, अव्याबाध और सामान्य एवम् विशेष उपयोगोंसे युक्त है । जो अनन्तगुणी, निर्गुणी किंवा ३१ गुणवाले या आठ कर्मों के क्षयसे उत्पन्न होनेवाले आठ गुणोंसे युक्त हैं । जो अनन्त, अनुत्तर, अनुपम, शाश्वत और सदानन्द ऐसे सिद्ध-सुख प्राप्त कर चुके हैं, वह सिद्ध भगवन्त मुझे शिव सुख देवें । राजा श्रीपालने इस प्रकार सिद्ध परमात्माकी स्तुति कर आचार्य महाराजकी स्तुति करना आरम्भ की ।

• आचार्य पदका वर्णन ।

जिन्होंने ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार रूप पांच आचारोंका निरतिचार भावसे शुद्धता-पूर्वक पालन किया है और अन्य मुनियोंसे पालन कराते हैं, जो शुद्ध

जिनोक्त दयामय सत्प्रधर्मको उपदेश द्वारा प्रकाशित करते हैं, उन आचार्य महाराजको मैं नमस्कार करता हूँ और उनसे ऐसे शुद्ध धर्मकी प्रेम-पूर्वक याचना करता हूँ ।

जो छत्तीस छत्तीसी अर्थात् १२६६ गुणोंसे युक्त हैं, युग प्रधान हैं, जगत्के जीवोंको निरन्तर उपदेश देते हैं, मोह-प्रेमके उत्पन्न करने वाले हैं, एक क्षणके लिये भी क्रुद्ध नहीं होते, ऐसे आचार्य महाराजको मैं विनय-पूर्वक वन्दन करता हूँ ।

निरन्तर जो अप्रमत्त दशामें रहते हैं, धर्मोपदेश देनेमें सावधानी रखते हैं, चार प्रकारकी विकथाओंसे दूर रहते हैं, पच्चीस कषायोंको सर्वथा त्याग कर देते हैं, जो क्लेश रहित, मलीन परिणाम रहित और माया-कपट रहित हैं, ऐसे आचार्य महाराजको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ।

जो गच्छमें मुनि आदिको सारणां (क्रिया

अनुष्ठानादि करनेमें कोई भूल होती हो तो उसे याद दिलाना) वारणा, (अशुद्ध क्रिया या अयोग्य भाषण करे तो उसे वारण करना) चोयणा (धर्म-क्रियामें और ज्ञानाभ्यासमें मुनि-ओंको प्रेरित करना) पडिचोयणा, (किसी मुनिको ज्ञान-क्रियादिमें प्रमाद करते देख वारंवार प्रेरित करना) प्रभृति द्वारा मुनियोंको — धर्म-कार्यमें लगाये रहते हैं, उत्तरोत्तर पाठ-को धारण करते हैं और जो गच्छके आधार-स्तम्भ रूप है, ऐसे आचार्य महाराज पर मेरा आन्तरिक प्रेम है ।

श्रीजिनेश्वररूपी सूय और सामान्य केवली रूपो चन्द्र अस्त होनेपर भी अज्ञान-अन्धकारको टालनेके लिये जो दीपकके समान हैं, तीनों भवनके पदार्थोंका स्वरूप प्रकट करनेमें जो परम चतुर हैं—समर्थ हैं ऐसे आचार्य चिरंजीवी अर्थात् दीर्घायुषी हों और उनके द्वारा भव्य-जीवोंका अपरिमित उपकार हो ।

जो देश, कुल, जाति और रूपादिक गुणों से सम्पन्न हैं, जो सूत्रार्थके ज्ञाता हैं, परोपकार परायण होनेके कारण तत्परोपदेशके दाता हैं, पाप भारसे पीड़ित होनेके कारण संसार-रूपी गहरे अन्धकूपमें गिरनेवाले प्राणियोंको जो बचाते हैं । माता-पिता और बन्धुओंसे भी जो अधिक हित-चिन्तक हैं । जो अनेक लब्धियों से समृद्ध, अतिशयवन्त, शासनको सुशोभित करनेवाले और राजाकी भांति निश्चिन्ता हैं ऐसे आचार्य महाराजको मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ और निरन्तर उनके दर्शन को, उनके उपदेशको और उनके संगको अभिलाषा करता हूँ । इस प्रकार श्रीपालने आचार्य महाराजकी स्तुति करनेके बाद उपाध्याय महाराजकी स्तुति करना आरम्भ किया ।

उपाध्याय पदका वर्णन ।

निरन्तर जो द्वादशाङ्गीका ध्यान करते हैं, उसके अर्थको पूर्ण रूपसे समझते हैं, एवं उसके

रहस्यको धारण करते हैं, सूत्रार्थका विस्तार करनेके लिये उत्सुक रहते हैं ऐसे उपाध्याय महाराजको मैं उत्साह-पूर्वक नमस्कार करता हूँ ।

‘अर्थ दाता आचार्य होते हैं और सूत्र दाता उपाध्याय होते हैं’ । इस प्रकारके दान विभागसे जो निरन्तर शिष्यगणोंको सूत्रार्थका दान करते हैं, जो तीसरे जन्ममें मुक्ति प्राप्त करने-वाले हैं ऐसे उपाध्याय महाराजको मैं नमस्कार करता हूँ ।

भगवन्त, गणधर महाराज या आचार्य यदि किसी मूर्ख मनुष्यको दीक्षा दे, उपाध्यायके पास अध्ययन करने भेजते हैं, तो पत्थरपर अंकुर जमानेकी भांति, उसके हृदयमें भी ज्ञानांकुर जमा देते हैं—उसे विचक्षण बना देते हैं—ऐसे सर्व पूजित, सर्व सूत्रार्थके ज्ञाता उपाध्याय महाराजको मैं नमस्कार करता हूँ ।

जिस प्रकार किसी राज्यके युवराज निरन्तर अपने राज-काजकी चिन्ता किया करते हैं उसी

प्रकार जो निरन्तर गच्छ स्थित मुनि आदिके हितकी चिन्ता किया करते हैं ऐसे उपाध्यायको मैं सदा सर्वदा नमस्कार करता हूँ ; क्योंकि उन्हें नमस्कार करनेसे सब प्रकारके भव-भय और शोक नष्ट हो जाते हैं ।

बावन अक्षर रूप, बावना चन्दनके रसके समान अपने वचनों द्वारा जो भव्य जीवोंके अहित रूप तापका सर्वथा नाश करनेवाले हैं जो जैन शासनको उज्ज्वल करनेवाले हैं ऐसे उपाध्यायको मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ ।

मोहरूप सर्पके काटनेसे जिनका ज्ञान-प्राण नष्ट हो गया है ऐसे जीवोंको जो जांगुली-मंत्र-वादीकी भांति अपूर्व ज्ञान सुना कर नया चैतन्य प्रदान करते हैं, अज्ञान रूपी व्याधिसे पीड़ित प्राणियोंको जो धन्वन्तरी वैद्यकी भांति श्रुत ज्ञान रूप उत्तम रसायन देकर व्याधिमुक्त-सज्ञान करते हैं, गुणरूपी वनका विनाश करनेवाले, मद रूपी गजको दमन करनेके लिये जो अंकुश

समान ज्ञान-दान करते हैं ऐसे उपाध्यायका मैं निरन्तर ध्यान करता हूँ । अज्ञान द्वारा जो लोग अन्ध हो जाते हैं उनके नेत्रोंको ज्ञानरूपी शस्त्र क्रिया द्वारा जो खोल दिया करते हैं, सब तरह के दानोंको अस्यायी समझकर अन्ततक साथ देनेवाले ज्ञानका ही जो दान करते हैं । ऐसे उपाध्याय महाराजको मैं शुद्ध अन्तःकरणसे नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार उपाध्याय पद की स्तुति करनेके पश्चात् राजा श्रीपाल मुनिपद का चिन्तन करने लगे ।

मुनिपदका वर्णन ।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपी अनुपम रत्न त्रयी द्वारा जो मोक्षकी सार्धना करते हैं । वही साधु-यति कहलाते हैं । ऐसे साधु, जिस प्रकार वृक्ष पर लगे हुए पुष्पपर झमर बैठता है और उसे किसी प्रकारकी हानि न पहुँचा कर धीरे-धीरे उसका रस-शोषण कर अपनी आत्माको

सन्तुष्ट कर लेता है, उसी प्रकार अनेक घरोंमें गोचरीके निमित्त जानेपर भी किसीको पीड़ा न हो, कष्ट न हो और ४२ दोषरहित शुद्धमान आहार ग्रहण करते हैं और उसीमें निर्वाह करते हैं । उन यति-मुनिराजको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ।

पञ्चेन्द्रियोंको जो निरन्तर अपने अधिन रखते हैं, छहकायके प्राणियोंका प्रतिपालन करते हैं और सत्तर प्रकारके संयमोंकी आराधना करते हैं ऐसे दयावन यतिजी महाराजको मैं वन्दन करता हूँ ।

अठारह हजार शिलाङ्ग रथके वहन करने वाले और अचल आचार युक्त चारित्र्यवाले यतिको प्रेम-पूर्वक वन्दन करनेसे यह मनुष्य जन्म पवित्र होता है ।

नव विध ब्रह्मचर्य-गुप्तिके पालनेवाले और बारह प्रकारके तप करनेमें वीर, ऐसे यतिको वन्दन करनेका सुयोग, पूर्व जन्मके पुण्य उद्भूत हुए बिना प्राप्त नहीं होता ।

छेदन, घर्षण, ताड़न और तपाने आदिके द्वारा जिस प्रकार सुवर्णकी विशुद्धता सिद्ध होती है और उसका रूप बढ़ता है, उसी प्रकार यतिराज अपने कठिन आचारोंके कारण उत्तरोत्तर उच्चसे उच्चतर स्थान प्राप्त करते जाते हैं । ऐसे यतिराजको सर्वदा नमस्कार करना परम कतव्य है । किन्तु इसके साथ ही देश-कालकी दृष्टिसे भी विचार करना उचित है; क्योंकि महाविदेह क्षेत्र में विचरण करनेवाले यति जैसे होते हैं, वैसे यतियोंका दर्शन यहां दुर्लभ ही समझना चाहिये । इसी प्रकार तीसरे या चौथे आरेके समान आज पांचवें आरेमें, वैसे यतियोंका मिलना असम्भव है । देश-कालानुसार कामिनी और कञ्चनसे दूर रहनेवाले संयमी यती ही इस समय पूजनीय हैं ।

आर्त्त और रौद्र ध्यानका त्यागकर धर्म और शुद्ध ध्यानका ध्यान करनेवाले, ग्रहण और आसेवना रूपी दो प्रकारकी शिष्टाओंका अ-

ध्ययन करनेवाले, तीन गुप्तिओंसे गुप्त, तीन शूल्योंसे रहित, जिताज्ञाका पालन करनेवाले, चारों प्रकारको विकथाओंका त्याग करनेवाले, चार कषायका त्याग करनेवाले, दानादि चार प्रकारके धर्मका उपदेश देनेवाले, पांच प्रमादोंके परिहारी, पांच समितियोंका पालन करनेवाले, हास्य प्रभृति षट्कसे मुक्त, छह व्रतोंको धारण करनेवाले, सात भयोंका जितनेवाले, आठ मदोंको टालनेवाले, अप्रमत्त भावका सेवन करनेवाले, दस प्रकारके यति-धर्मका पालन करनेवाले, यतिकी बारह पडिमाओंका वहन करनेवाले और सर्वत्र विचरण करनेवाले यतिजी महाराजको मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार साधु पदकी स्तुति करनेके पश्चात् राजा श्रीपालने दर्शन पदका स्तवन करना आरम्भ किया ।

दर्शन पदका वर्णन ।

शुद्ध देव अर्थात् अठारह दोष रहित अरि-

हन्त, शुद्ध गुरु यामी पञ्च महाव्रतका पालन करनेवाले यति और शुद्ध धर्म अर्थात् दयायुक्त प्रधान धर्म । इन तीनों तत्त्वकी भलि प्रकार परीक्षा कर उनपर दृढ़ श्रद्धा करना इसीको सम्यग् दर्शन कहते हैं ।

कर्म रूप जो मल अर्थात् अनन्तानु बन्धी चार कषाय और तीन प्रकारकी दर्शन मोहिनी — इन सात प्रकृतियोंके उपशमसे, क्षयोपशमसे किंवा क्षय होनेसे उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक नामक समकितकी प्राप्ति होती है । ऐसे समकितकी प्राप्ति होनेसे ही जैन धर्म पर दृढ़ अनुराग होता है, इसलिये मैं शुद्ध समकितको नमस्कार करता हूँ ।

उपशम समकित, भव-चक्रवालमें यानी जन्म भरमें अधिकसे अधिक पाँच बार प्राप्त होता है । वह एक बार तो अनावृत्ति मिथ्यात्वी अवस्थामें प्राप्त होता है और चार बार उपशमश्रेणीके चिन्तनसे प्राप्त होता है । क्षयोपम समकित

असंख्यात बार प्राप्त होता है, अर्थात् अनेक बार आता और जाता है, दायिक, समकित केवल एक ही बार प्राप्त होता है, क्योंकि वह आनेके बाद फिर कभी नहीं जाता—मोक्षपर्यन्त अविच्छिन्न रहता है । इस तरहके तीनों प्रकारके समकितको मैं नमस्कार करता हूँ ।

जिस समकित गुणके बिना ज्ञान अप्रमाण है—अज्ञान रूप है, चारित्र रूपी वृत्त फलीभूत नहीं होता अर्थात् उसके वास्तविक फलज्मी प्राप्ति नहीं होती और जिसके बिना निर्वाण सुखकी प्राप्ति होती ही नहीं, ऐसे प्रबल समकित गुणको मैं बारंबार वन्दन करता हूँ ।

सद्वहणा, लिङ्ग, लक्षणा, भूषण प्रभृति, ६७ बोल —वचनोंसे जिसकी सम्पूर्णा व्याख्या हो सकती है—जिसका स्वरूप समझाया जा सकता है ऐसे शिवमार्गकी अनुकूलता कर देनेवाले समकित दर्शनको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ ।

आयुको छोड़कर सातों कर्मोंकी स्थिति

जब एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपमके अन्दर हुई हो और अर्ध पुद्गल परावर्तसे भी संसार कम रहो हो, तब यथाप्रवृत्ति, अपूर्व और अनिवृत्ति यह तीन करण करनेसे राग-द्वेषकी निबिड़ ग्रन्थीका भेदन होता है और तभी जीव सम-कितको प्राप्त करता है । यही समकित, धर्म-रूपी वृक्षका मूल है, धर्मपुरीका द्वार है, धर्म प्रासाद-किलेकी नींव है, समस्त धर्मोंका आधार है, उपशम रसका भाजन है, और गुण रूपी रत्नोंका भण्डार रूप है । अतएव इसे मैं त्रिविध नमस्कार करता हूं । इस प्रकार दर्शन पदकी स्तुति करनेके बाद राजा श्रीपालने ज्ञान पदकी स्तवना करना आरम्भ किया ।

ज्ञान पदका वर्णन ।

सर्वज्ञ प्रणीत आगममें बतलाये हुए यथा स्थित तत्वोंके शुद्ध बोधको सम्यग्ज्ञान कहते हैं । इस ज्ञानके विना भठ्यात्माको भदयाभदय का स्वरूप, पेयापेयका विचार और कृत्याकृत्यका

विवेक नहीं हो सकता । निरुवच और दूषण रहित आहार भक्ष्य है । 'अभक्ष्य, अनन्तकाय, सावद्य और दूषित आहार' अभक्ष्य हैं । दूध, पान, छास-मट्ठा आदि पदार्थ पीने योग्य हैं । ताड़ी, मदिरा आदि मादक पदार्थ त्याज्य हैं । यति और गृहस्थ आदिका धर्म आचरणीय है और लोक विरुद्ध, धर्म विरुद्ध कार्य त्याज्य है । यह सब बातें सम्यग् ज्ञानसे ही जानी जा सकती हैं । इसीलिये यह ज्ञान सबका आधार भूत है ।

“प्रथम ज्ञान और फिर दया” यह सिद्धांत का कथन है ; क्योंकि ज्ञानके बिना जीव और अजीवके यथार्थ स्वरूपका बोध नहीं होता और ऐसी अवस्थामें दया-धर्मका पालन होना कठिन हो पड़ता है । इसलिये यह अपूर्व ज्ञान अतीव वन्दनीय है । उसकी निन्दा कभी न करनी चाहिये; क्योंकि मोक्ष-सुखका रसास्वादन ज्ञानी ही कर पाते हैं, अज्ञानी नहीं ।

सिद्धान्तोक्त सभी क्रियाओंका मूल श्रद्धा है और श्रद्धाका मूल ज्ञान है; क्योंकि ज्ञानके बिना वास्तविक श्रद्धा नहीं होती। यदि होती है तो वह स्थायी नहीं रहती। इसलिये सब गुणों के आधारभूत ज्ञानको सदैव धारण करना चाहिये। यही ज्ञान सदा सर्वदा सबके लिये वन्दनीय और ग्रहणीय है।

मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यव और केवल, इन पांच ज्ञानोंमें, लोकालोक प्रकाशक उत्कृष्ट ज्ञान तो केवल ज्ञानही है, किन्तु उसके द्वारा जाने हुए भावोंको प्रगट करनेवाला सम्यक् ज्ञान है। यही ज्ञान, स्व और परके यथार्थ रूपको प्रकट करता है, समस्त संसारके जीवोंका कल्याण करनेवाला है। दीपककी भांति अज्ञानान्धकारको दूर करने वाला है। और इसके उपकारोंको देखते हुए इसे सूर्य, चन्द्र और मेघकी भी उपमा दी जा सकती है।

ऐसे सर्वोत्तम ज्ञानकी प्राप्तिके लिये भव्य

जीवोंको ज्ञानका ही पठन-पाठन, श्रवण मनन, पूजा अर्चा और आलेखन करना चाहिये । जिस से ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट हो जायें और हाथमें रखे हुए आँवलेकी भाँति तीनों लोकके भाव जाने जा सकें । साथ ही जिस सम्यग् ज्ञानसे इस संसारमें भी मान, पूजा और प्रशंसाकी प्राप्ति होती है, उस ज्ञानका आदर-पूर्वक सदा ध्यान करना चाहिये ।

इस तरह सम्यग्ज्ञानकी स्तुति करनेके बाद राजा श्रीपालने चारित्र पदकी स्तुति करना आरम्भ किया ।

चारित्र पदका वर्णन ।

चारित्रके दो भेद हैं—(१) सर्वविरति और (२) देशविरति । सर्वविरति चारित्र यतियोंमें और देशविरति चारित्र गृहस्थों (श्रावकों) में पाया जाता है । जिस चारित्रके कारण इस संसारमें सर्वत्र विजय प्राप्त होता है, उस चारित्रको मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ ।

‘छह खण्डकी ऋद्धिके स्वामी चक्रवर्ती भी तृणकी भाँति अपनी संमस्त ऋद्धियोंका त्याग कर अक्षय सुखके कारण भूत जिस चारित्रिका स्वीकार करते हैं, उस चारित्रिने मेरे हृदय पर भी अधिकार कर लिया है । चारित्रिका स्वीकार करनेवाला एक दरिद्र भी इन्द्रों और नरेन्द्रों द्वारा पूजित होता है । सांसारिक अवस्थामें प्रार्थना करनेपर भी जो लोग दृष्टि उठाकर नहीं देखते, ‘वही लोग यति-अवस्थामें आ-आकर चरणोंमें शिर झुकाते हैं । ऐसे प्रत्यक्ष फल देनेवाले चारित्रिको मैं वन्दन करता हूँ ।

जिस चारित्रिके बारह मासके पर्यायसे अनुत्तर विमानके सुखको भी भुलानेवाले उत्तम सुखकी (उत्तम होनेका कारण यह है कि अच्छे से अच्छा अनुत्तर निमानका सुख भी पौद्गलिक और नाशवन्त होता है ; किन्तु बारह मासके शुद्ध चारित्रिसे प्राप्त होनेवाला समाधि-सुख अपौद्गलिक—आत्मिक होता है ।) प्राप्ति

होती है, साथ ही जिस चारित्रिके प्रभावसे उज्ज्वल मोक्ष-सुख प्राप्त किया जा सकता है, उस चारित्रिको मैं नमस्कार करता हूँ ।

ज्ञान और दर्शन गुण परस्पर सहायक हैं । ज्ञानसे श्रद्धा गुण प्रकट होता है और श्रद्धा रूप दर्शन गुणसे अज्ञान ज्ञानके रूपमें परिणत हो जाता है । किन्तु इन दोनोंका फल विरति चारित्र है । ज्ञान दर्शनकी प्राप्तिसे यदि विरति गुण प्राप्त किया जा सके, तो उसे सफल समझना चाहिये । अन्यथा वह बन्ध्य—निष्फल है । चारित्रिके साथ रहनेपर ही वह पूर्ण फलदायी होता है, इसलिये चारित्र ही सर्व-श्रेष्ठ है । शास्त्रोंमें चारित्रिके सामायिक आदि पांच भेद बतलाये गये हैं । उसी चारित्रिको अरिहन्तादिकने स्वीकार किया है, उसकी आराधना की है, उसे सम्यक् रीत्या प्ररूपित किया है, और अनेक भव्य जीवोंको दिया है । चारित्रिके अनन्त गुण होनेपर भी शास्त्रकारोंने सत्रह और दश प्रकारसे

उसका वर्णन किया है । पांच समिति, तीन गुप्ति, जमादिक गुणोंका सेवन, मैत्री प्रमुख भावना चतुष्टयोंका चिन्तन, और परिसह उप-सर्मादिके सहन प्रभृति द्वारा उसकी पूर्णता प्राप्त होती है । ऐसे चारित्रको मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार चारित्र पदकी स्तुति कर राजा श्रीपालने अन्तिम तप पदकी स्तुति आरम्भ की ।

तप पदका वर्णन ।

अरिहन्त परमात्मा जो जन्महीसे तीन ज्ञानके जानकार थे और जो यह जानले थे, कि इसी जन्ममें हमारी सिद्धि होनेवाली है, फिर भी कर्मोंका क्षय करनेके लिये, उन्होंने जिस तपका आरम्भ किया, उस शिव-तरुके मूल रूप तपको मैं नमस्कार करता हूँ ।

जमा, संयुक्त भावसे जिस तपको करनेसे पूर्वके निकाचित कर्म भी क्षय हो जाते हैं, वही तप वास्तवमें सेवन करने योग्य है । जैन शा-

सनकी प्रभावना करनेमें भी, जो तप सहाय भूत होता है और जिसके पालनसे जैन शास्त्रन की उत्तमताको प्राप्त करता है, उस तपको मैं प्रणाम करता हूँ ।

जिस तपके प्रभावसे आभौषधी प्रभृति अनेक लब्धियाँ एवम् अष्ट महासिद्धि और नव निधियोंकी प्राप्ति होती है, उस तपको मैं सादर प्रणाम करता हूँ ।

तप पदकी आराधनासे प्राप्त होनेवाली लब्धि आदिके नाम जाननेकी पाठकोंको स्वाभाविक ही इच्छा होगी, अतएव उनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं :—

२८ लब्धियाँ—(१) आभौषधी—केवल हाथके स्पर्श करनेसेही रोगी रोग मुक्त हो जाय ।
(२) विप्रौषधि—मल-मूत्रसे रोग लूट हो जाना ।
(३) जल्लौषधि—श्लेष्म! औषधिका काम करे ।
(४) मलौषधि—शरीरके मलमात्र औषधिके काम करें ।
(५) सर्वौषधि—रोग और नखादिकसे

सब तरहके रोग नष्ट हो सकें । (६) संभिन्नश्रोत—
 बाजे आदि सुननेकी शक्ति सब इन्द्रियोंको एक
 साथ ही प्राप्त होना (७) अवधिज्ञान—अवधि-
 ज्ञानकी प्राप्ति होना (८) ऋजुमति—मनः पर्यव
 ज्ञानका होना (९) विपुलमति—विपुलमति मनः
 पर्यव ज्ञानका होना (१०) चारण—जंघाचारण
 और विद्याचारणपनेकी प्राप्ति होना (११) आसि-
 विष—दूसरोंका विष उतारनेकी शक्ति आ जाना
 (१२) केवलज्ञान—केवलज्ञानकी प्राप्ति (१३)
 गणधर—गणधरत्वकी प्राप्ति (१४) श्रुतज्ञान-
 पूर्वधरपनेकी प्राप्ति (१५) तीर्थकर—समवसरण
 की रचना कर तीर्थकरके समान महिमा दिख-
 लाना (१६) चक्रवर्ती—चक्रवर्तीके समान राज-
 ऋद्धि दिखलाना (१७) बलदेव—बलदेवकी
 ऋद्धि प्राप्त होना (१८) वासुदेव—वासुदेवकी
 ऋद्धि प्राप्त होना (१९) चीराश्रव, मध्वाश्रव
 किंवा घृताश्रव—वातोंमें दूध और मिथ्रीसे भी
 अधिक मधुरता होना (२०) कोष्ठक—अन्तः-

करणमें समस्त (भाव) ऋद्धिर्योका परिपूर्ण होना (२१) पदानुसारिणी—एक पदके संहारे अनेक पदोंको जाननेकी शक्ति होना (२१) बीजबोध—वस्तुका यथार्थ रूप जाननेकी शक्ति (२३) तेजोलेश्या—तेजोलेश्याका प्राप्त होना (२४) शीतलेश्या—शीतलेश्याका प्राप्त होना (२५) आहारक—शरीरको आहारक बना सकना (२६) वैक्रिय—शरीरको वैक्रिय कर सकना (२७) अचीण महानसी—रसोईके पात्रमें अंगूठा रखनेसे हजारों मनुष्योंको भोजन करानेकी शक्ति । (२८) पुलाक—चक्रवर्तीकी सेनाको भी पराजित करनेकी शक्ति ।

तत्पके प्रभावसे प्राप्त होनेवाली अष्टसिद्धियोंके नाम ये हैं :—(१) अणिमा—छोटेसे छोटे छिद्रमें प्रवेश करने योग्य शरीर बना सकना या कमल-नालमें प्रवृष्ट हो चक्रवर्तीकी सिद्धिको विस्तारित करनेकी शक्ति प्राप्त करना (२) महिमा—मेरुसे भी बड़ा रूप धारण

की शक्ति (३) : लघिमा—वायुसे भी हलका शरीर बना सकना (४) गरिमा—शरीरको वज्रसे भी भारी बना सकना (५) प्राप्ति—पृथ्वीपर रहनेपर भी मेरुके अग्र भाग किंवा सूर्यके किरणोंको स्पर्श करना (६) प्राकाश्य—जमीन पर चलनेकी तरह पानीपर चलना और जमीनमें पानीकी भांति गोता लगाना । (७) ईशत्व—तीर्थकर, किंवा इन्द्रकी तरह ऐश्वर्य भोग करना (८) वशीत्व—प्राणीमात्रका वशी भूत करनेकी शक्ति होना ।

नव निधिके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि इनकी प्राप्ति चक्रवर्तियोंको हुआ करती है । जिन पाठकोंने भरत प्रभृति चक्रवर्तियोंका चरित्र पढ़ा या सुना होगा, वे निधियोंका स्वरूप आसानीसे समझ सकेंगे । अब हम पुनः श्रीपालकी स्तवनाका वर्णन करते हैं ।

तपः अपूर्व कल्पवृक्ष है । मोक्ष-सुखकी प्राप्ति इसका फल है । देवता, मनुष्य, इन्द्र

किंवा चक्रवर्तीकी ऋद्धियाँ उसके पुष्प समान हैं। उपशम रस उसका अमूल्य मकरन्द—सुगन्ध है। इस तरहके कल्पवृक्ष रूपी तपको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ।

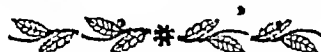
इस तपके छह बाह्य और छह अभ्यन्तर मिला कर बारह अङ्ग हैं। यह उत्तरोत्तर विशेष गुणकारी हैं। जिस प्रकार अग्निमें तपानेसे स्वर्णका मैल दूर हो जाता है, उसी प्रकार तप-श्रवणके बलसे जीवमें लगा हुआ कर्मरूपी किटक दूर हो जाता है, फलतः जीवात्मा कर्म रहित दशाको प्राप्त करता है। कर्मों की निर्जरा करनेका अपूर्व साधन तप ही है। किन्तु वह समता सहित और आशंसा रहित होनेसे ही यथार्थ फलदायी होता है। इसके द्वारा असाध्य से असाध्य लौकिक कार्य भी क्षणमात्रमें सिद्ध हो जाते हैं। अतएव इस तप पदको मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ ।

राजा श्रीपाल इस प्रकार नव पदके ध्यानमें

लीन हो गये । अन्तमें आयुष्य पूर्ण होनेपर जब उनका शरीरान्त हुआ तब वे नवें आनत देव लोकमें देवताके रूपमें उत्पन्न हुए । मैना प्रभृति नव रानियाँ और उनकी माता कमलप्रभाका शरीरान्त होनेपर वे भी वहीं देव रूपमें उत्पन्न हुईं । वहाँपर वे देवत्वके सुख उपभोग कर, आयुष्य पूर्ण होनेपर पुनः मनुष्य होंगे । इसी प्रकार चार बार मनुष्यत्व और चार बार देवत्व प्राप्त कर, वे नवें जन्ममें सिद्धि सुख अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति करेंगे ।



पहलेसे ग्राहके बननेवाले परम पूजनीय यति-मुनियोंकी नामावली ।



- | | |
|--|------------------|
| (३) मुनिराज श्री मंगल सागरजी महाराज | बीकानेर । |
| (२) यतिजी महाराज श्री हेमचन्द्रजी साहब | कलकत्ता । |
| (२) मुनिराज श्री कीर्ति सागरजी महाराज | लोहावट । |
| (१) यतिजी महाराज श्री जयचन्द्रजी उपाध्याय | कलकत्ता । |
| (१) यतिजी महाराज श्री लब्धि सागरजी | मारवाड़ जंक्शन । |
| (१) यतिजी महाराज श्री पन्नालालजी | कलकत्ता । |
| (१) यतिजी महाराज श्री जीवणमलजी शिष्य गोपाल चन्द्रजी | हिंगनघाट । |
| (१) यतिजी महाराज श्री लक्ष्मीविजयजी बल्लभविजयजी उदयपुर । | |
| (१) उपाध्यायजी श्री सुमति सागरजी महाराज | छबड़ा गुंगेर । |
| (१) मुनिराज श्री सुमति मुनिजी महाराज | चान्दवड़ । |
| (१) यतिजी महाराज प्रेम सुन्दरजी | फलोदी |

श्रावकोंकी नामावली ।

-
- | | |
|--|-------------|
| (२५०) बहादुर सिंहजी साहब सिंधी (अजीमगंज) | कलकत्ता । |
| (१०) रणजितसिंहजी साहब दुधौड़िया | ” कलकत्ता । |
| (१०) नरपतसिंहजी सुरपतसिंहजी | [अजीमगंज । |
| (५) सेठ रोशनलालजी साहब चतुर | उदयपुर । |

(४) सूरजमलजी मानमलजी	मुगेली ।
(१) गुलाब कुमारी पुस्तकालय	कलकत्ता ।
(१) चिन्तामनलालजी भागशाली	नाथनगर ।
(१) इन्दरमलजी लूणिया	हैदराबाद ।
(१) सर्व हितैषी जैन वाचनालय	(बड़गांव) शिवगंज ।
(१) श्रीचन्दजी नाहटा	किशनगंज ।
(१) मगनमलजी पारख	वन (ग्रेन्याल)
(१) गणेशमलजी बस्वोली	कलकत्ता ।
(१) राजकुमार सिंहजी मुक्तिम	कलकत्ता ।
(१) रायकुमार सिंहजी मुक्तिम	कलकत्ता ।
(१) प्रतापमलजी इन्दरमलजी वागरेचा	जोधपुर ।
(१) दुलिचन्दजी वैद	कलकत्ता ।
(१) नौबत रायजी बदलिया	कलकत्ता ।
(१) मिठालालजी कोठारी	जेसलमेर ।
(१) कल्लूमलजी साहव पालावत	अलवर ।
(१) जैन श्वेताम्बर मित्रण्डल पुस्तकालय	जयपुर ।
(१) जवाहिरलालजी खर्याभ	देहली ।
(१) पद्मालालजी जैन	देहली ।
(१) मानमलजी कान्दुरामजी	जयपुर ।
(१) महावीर पुस्तकालय	रायपुर ।
(१) विज्ञानचन्दजी कोठारी	बुलाढणा ।
(१) भोतिचन्दजी रतनचन्दजी जैन	धाना कटंगी

- (१) एच० एम० पुनमचन्दजी उदमराजजी कानुग टिन्डीवामम ।
- (१) जैन श्वेताम्बर ज्ञान-भण्डार लहावट ।
- (१) जिन कृपाचन्द्र सूरि ज्ञान-भण्डार इन्दोर ।
- (१) महावीर जैन पुस्तकालय रावलपिन्डी ।
- (१) हिरालालजी खराड कलकत्ता ।
- (१) जैन श्वेताम्बर प्रिय मण्डल कटंगी ।
- (१) गुलाबचन्दजी गणेशिलालजी शिरपुर ।
- (१) सुगनचन्दजी लुणावत धामक ।
- (१) रायबहादुर सुखराज रायजी नाथनगर ।
- (१) गणेश पुस्तकालय रायपुर ।
- (१) विरधीचन्दजी सांकला उदयपुर ।
- (१) सेठ ताराचन्दजी भूरा सिवनी ।
- (१) सुरजमलजी गान्धी डुंगरपुर वर्तमान मारवाड़ जंक्शन ।
- (१) निरमलसिंहजी विमलसिंहजी कोठारी कलकत्ता ।
- (१) गंभिरसिंहजी श्रीमाल कलकत्ता ।
- (१) पुनमचन्दजी सावन सुखा कलकत्ता ।
- (१) भंवर लालजी जिन्दाणी जेसलमेर ।
- (१) मनसुख दासजी जैन जेसलमेर ।
- (१) लक्ष्मीपति सिंहजी कोठारी कलकत्ता ।
- (१) कन्हैयालालजी रतनचन्दजी कोचर जयपुर ।
- (१) सोभागमलजी मोहता जेसलमेर ।
- (१) केसरीचन्दजी जसराजा बैगाणी बीकानेर ।

(१) श्रीचन्दजी कोचर	रोय (चान्दा)
(२) हस्तीमलजी कटारिया	उलीपुर ।
(२) रामचन्द्रजी की धर्मपत्नी	कलकत्ता ।
(१) जैन श्वेताम्बर आरती मण्डल	गुजरानवाला ।
(१) शाह चुनीलालजी गुलाबचन्दजी	पुना लरकर ।
(१) वंसीलालजी बोहोरा	पीपाड़ (मारवाड़) ।
(१) गंभिरमलजी मोहता	पीपाड़ (मारवाड़) ।
(१) इया रामजी लूणिया	लोहावट (मारवाड़) ।
(१) बकसीरामजी कोसरी चन्दजी	कलकत्ता ।
(१) छगनमलजी भैरवकसजी	(जयनगर) ।
(१) प्रतापचन्दजी ढड्डा	रंगून ।
(१) प्रेमचन्दजी नाहटा	गवालियर ।
(१) चान्दमलजी सुरजमलजी मुधा	लासुर ।
(१) हरखचन्दजी छोगमलजी कोठारी	बिआवर ।
(१) कजोडीमलजी केशरीमलजी डागा	बिआवर ।
(१) मानमलजी खजांची	राजगढ़ ।
(१) कैलरीचन्दजी धूपियाली भाता	कलकत्ता ।
(१) सोभागमलजी जैन	बड़नगर ।
(१) रायबहादुर कोठारीजी छगनमलजी मोतिसिंहजी	उदयपुर ।
(१) जुहारमलजी अमानमलजी माल	रायपुर ।
(१) महादेवजी श्रीमाल	भुंभनू शेखावटी ।
(१) कसुलसिंहजी जैन	जालंधर

(१) गुलाब बाई	सिवनी ।
(१) मोहनलालजी पारस	साहेबगंज ।
(१) तेजकरणजी कोचर	साहेबगंज ।
(१) केसरी चन्दजी गोलछा	कलकत्ता ।
(१) हेमचन्द्र जैन पुस्तकालय	बोझानेर ।
(१) किसनचन्दजी राखेचा	बीकानेर ।
(१) वंशीलालजी बरढिया	बीकानेर ।
(१) परागदासजी जैन बवागंज	प्रतापगढ़ ।
(२) सेठ लक्ष्मीचन्दजी साहब घीया	प्रतापगढ़ ।
(१) रतनलालजी चान्दमलजी कोचर	धमरी ।
(१) करणीदानजी रतनलालजी धाडिवाल	नागपुर ।
(१) सुखरामजी नन्दगमंजी	देवास जुनियर ।
(१) सिधकरणजी सुन्दरलालजी नाहटा	बीकानेर ।
(१) शंकरदानजी सुभयराजजी नाहटा	कलकत्ता ।
(१) महताप चन्दजी छोपरिया	रानीगंज ।
(१) श्री जैन चन्द्रप्रभा लाइब्रेरी	सुलेवेपरी मद्रास ।
(१) गुलराजजी फोजराजजी कानुगा	मद्रास ।



उत्तमोत्तम सचित्र पुस्तकें पढ़िये !

कपोल-कल्पित उपन्यास और खराब किस्से कहानियाँ न पढ़ कर हमारे नीचे लिखे हुए महापुरुषोंके उत्तमोत्तम सुन्दर और हृदय-ग्राही चरित्र पढ़िये । इन चरित्रोंको पढ़कर आपकी आत्मा प्रफुल्लित हो उठेगी । आपकी नसोंमें धात्म-गौरवके मारे गर्म खून दौड़ने लगेगा । हजार कामोंमें कियायत कर आज ही इन सर्वाङ्ग सुन्दर पुस्तकोंको मंगवाकर अपने हृदयका शृङ्गार बनाइये । पढ़-लेकी अपेक्षा पुस्तकोंको मूल्य घटाकर आधा कर दिया गया है ।

आदिनाथ चरित्र सजिल्द	३)	पयुषण पर्व महात्म्य	१)
शान्तिनाथ चरित्र	३)	कलावती	१)
श्रीपाल-चरित्र	२॥)	सुरसुन्दरी	१)
अर्धधात्मअनुभव योगप्रकाश	२)	अञ्जनासुन्दरी	१)
द्रव्यानुभव रत्नाकर	१॥)	सती सीता	१)
शुक्रराज कुमार	॥)	चम्पक सेठ	१)
रतिसार कुमार	१५)	कयवन्ता सेठ	१)
नल-दमयन्ती	॥)	जय विजय	१)
हरिवल मच्छी	१५)	रत्नसार कुमार	१)
चन्दन वाला	१५)	अरुणिक मुनि	१)
सुदर्शन सेठ	१५)	विजयसेठ-विजया सेठानी	१)
राजा प्रियङ्कर	॥)	ललितांग कुमार	॥)

मिलनेका पता:—परिडत काशीनाथ जैन ।

मु० बंबोरा, पोस्ट—भीन्डर मेवाड़)

